मूल्य: ₹30 जुलाई–अगस्त 2025 आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

फल फूल

भाकृअनुप
ICAR

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

इस अंक में

- स्ट्रॉबेरी का गर्म क्षेत्रों में भरपूर उत्पादन
- चौलाई की व्यावसायिक खेती
- बदलते मौसम में लीची की खेती
- हरी पत्तेदार सब्जियों से पोषण वृद्धि

समृद्धि की दिशा में समेकित प्रयास

भारत की कृषि व्यवस्था आज एक ऐसे मोड़ पर है जहाँ परंपरा और नवाचार, दोनों का समन्वय आवश्यक हो गया है। बदलते मौसम, बाजार की जटिलताएं, लागत में बढ़ोतरी और ग्रामीण क्षेत्रों की विविध समस्याएं खेती को चुनौतिपूर्ण बनाती हैं। इन सभी के बीच यदि कोई दृष्टि व्यापक स्तर पर किसानों से जुड़कर समाधान खोजती है, तो वह एक स्थायी और दूरदर्शी परिवर्तन की नींव रख सकती है। ऐसी ही एक पहल के रूप में "विकसित कृषि संकल्प अभियान" सामने आया है, जो केवल एक सरकारी कार्यक्रम नहीं, बल्कि खेती को वैज्ञानिक सोच, नीति निर्माण और स्थानीय अनुभव से जोड़ने वाला राष्ट्रीय प्रयास है।

विकसित कृषि संकल्प अभियान भारत की कृषि प्रणाली को वैज्ञानिक, समेकित और किसानोन्मुखी बनाने का एक व्यापक प्रयास है। यह अभियान देश के 1,40,365 गावों में पहुंचा और 1.35 करोड़ से अधिक किसानों से सीधा संवाद स्थापित किया गया। इसके अंतर्गत 2170 से अधिक वैज्ञानिकों, कृषि अधिकारियों और विशेषज्ञों की टीमों ने गांव-गांव जाकर किसानों की समस्याएं सुनी, समाधान सुझाए और खेती को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उन्नत करने की दिशा में महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

समेकित संस्थागत दृष्टिकोण

भारत में कृषि से जुड़ी अनेक संस्थाएं, कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थान, राज्य व केंद्र सरकार के विभाग अपने-अपने स्तर पर काम कर रहे हैं, लेकिन अक्सर ये प्रयास अलग-अलग दिशा में होते हैं। इस अभियान के माध्यम से एक साझा दृष्टिकोण विकसित करने और सभी संस्थाओं को एकजुट कर एक दिशा में कार्य करने का प्रयास किया गया।

फसलवार योजना और समन्वय

कुछ प्रमुख फसलों जैसे सोयाबीन, कपास, गन्ना, दलहन और तिलहन के लिए विशेष कार्ययोजनाएं बनाई जा रही हैं। साथ ही प्रत्येक राज्य के लिए एक नोडल वैज्ञानिक अधिकारी नियुक्त किया जाएगा जो स्थानीय कृषि परिस्थितियों के अनुसार समाधान देगा और राज्य सरकारों से समन्वय करेगा।

गुणवत्ता नियंत्रण और नीतिगत सुधार

अमानक बीज और कीटनाशक के उपयोग से फसल की गुणवत्ता और उत्पादन पर प्रभाव पड़ रहा है। इसे रोकने के लिए बीज अधिनियम को कड़ा बनाया जा रहा है और एक प्रभावी व्यवस्था तैयार की जा रही है ताकि केवल गुणवत्तायुक्त आदान किसानों तक पहुंचें।साथ ही जैविक प्रमाणीकरण प्रक्रिया को सरल बनाने, चारा नीति और एफपीओ की व्यवहारिकता को बढ़ाने के लिए भी नीति स्तर पर सुधार प्रस्तावित हैं।

सीमांत क्षेत्रों पर ध्यान

यह अभियान केवल मुख्य क्षेत्रों तक सीमित न रहकर जनजातीय जिलों, आकांक्षी जिलों और सीमावर्ती गांवों तक भी पहुंचा। इन इलाकों में लगभग 18 लाख किसानों तक वैज्ञानिकों की टीमें पहुंचीं। क्षेत्रीय जलवायु, मिट्टी और संसाधनों के अनुसार उपयुक्त तकनीकों और फसल किस्मों की जानकारी दी गई।

सीमांत एवं दूरस्थ क्षेत्रों में विशेष ध्यान

किसान चौपाल

अभियान की जान बनीं किसान चौपालें, जहां वैज्ञानिकों और किसानों के बीच खुलकर चर्चा हुई। मिट्टी के पोषक तत्व, बीज चयन, फसल चक्र, कीट नियंत्रण, जल प्रबंधन जैसे विषयों पर गहन संवाद हुआ। कई किसानों ने अपनी समस्याएं सामने रखीं, जिससे नए शोध विषय भी सामने आए।

भावी परिदृश्य

यह अभियान कोई एक बार की पहल नहीं, बल्कि एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। आगामी रबी मौसम में इसे फिर से संचालित किया जाएगा। इसका लक्ष्य है कि विज्ञान को खेतों से जोड़ा जाए, उत्पादन बढ़े, लागत घटे और खेती एक लाभदायक व्यवसाय बने।

भविष्य में इस अभियान के माध्यम से खेती को पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ, आर्थिक रूप से लाभदायक और सामाजिक रूप से सम्मानजनक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। लक्ष्य है कि भारत खाद्य सुरक्षा में आत्मनिर्भर बने और वैश्विक खाद्य आपूर्ति में अग्रणी भूमिका निभा सके। ■

किसान चौपाल के माध्यम से वैज्ञानिकों से खुला संवाद

अनुसंधान से किसान को जोड़ना

यह अभियान अनुसंधान और किसानों के बीच दूरी को पाटने में सहायक सिद्ध हुआ। आमतौर पर शोध विषय संस्थानों में तय किए जाते हैं, जो कई बार जमीनी जरूरतों से मेल नहीं खाते। लेकिन इस अभियान में सामने आया कि किसान स्वयं भी नवाचार कर रहे हैं। उनके अनुभवों और प्रयोगों को वैज्ञानिक मान्यता देकर उन्हें प्रचारित करने की दिशा में कदम उठाए जा रहे हैं।

ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी

वर्ष: 46, अंक: 4, जुलाई–अगस्त 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डॉ. एस के सिंह** **अध्यक्ष**
   उपमहानिदेशक (बागवानी)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
2. **डॉ. अनुराधा अग्रवाल** **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
3. **डॉ. टी दामोदरन** **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप–केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ
4. **डॉ. जगदीश राणे** **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान
5. **डॉ. मारकंडे सिंह** **सदस्य**
   विभागाध्यक्ष
   पुष्प विज्ञान विभाग, भाकृअनुप–भाकृअनुसं, नई दिल्ली
6. **प्रो. राजेश्वर सिंह चंदेल** **सदस्य**
   कुलपति
   डॉ. वाई एस परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौनी, हिमाचल प्रदेश
7. **श्री शरद पांडे** **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री कंवल सिंह चौहान** **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिंदी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल

संपादक
सुनीता अरोड़ा

संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाष: 011–25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली–12

एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 150.00
विशेषांक : रु. 100.00

E-mail : phalphul@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप–डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुनः प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों–कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय सूची

मानसून में नर्सरी लगाना–हरियाली से रोजगार – **अनुराधा अग्रवाल**

अनूठा — 4
गुणों से भरपूर नागफनी फल
बृज लाल अत्री

मुनाफा — 8
पर्वतीय क्षेत्रों में गैर–मौसमी सब्जी उत्पादन
रेनू सनवाल, राहुल देव, निर्मल हेडाऊ **और** लक्ष्मी कान्त

पुष्प उत्पादन — 11
रजनीगंधा पुष्प की उन्नत खेती
कृष्ण पाल सिंह **और** मधु बाला

स्वास्थ्यवर्द्धक — 15
हरी पत्तेदार सब्जियों से पोषण वृद्धि
पुष्पेन्द्र प्रताप सिंह, राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा, राघवेन्द्र सिंह, शुभम यादव **और** सुनील कुमार

सफलता गाथा — 18
स्ट्रॉबेरी का गर्म क्षेत्रों में भरपूर उत्पादन
नरेन्द्र मोहन सिंह, अलका सिंह, उत्कर्ष तिवारी **और** एम.बाला सुब्रमनियन

तकनीक — 20
चौलाई की व्यावसायिक खेती
मनीष कुमार, मनप्रीत कौर, कृष्णा **और** संजय सिंह

प्रबंधन — 23
खीरा फसल में रोगों की रोकथाम
सुमित कुमार, विनय कुमार सिंह **और** जितेंद्र कुमार कुशवाहा

रणनीति — 27
आम में फल मक्खी का जैविक प्रबंधन
मारुवरसी पी, संजय कुमार सिंह, कमला जयंती, शंकरन एम, जयंतीमाला बी.आर **और** मेघा आर

मनमोहक — 30
फूलों की जलवायु अनुकूल खेती
हेमालता सिंह, रोशनी अग्निहोत्री, ज्योत्स्नारानी प्रधान **और** यश भारद्वाज

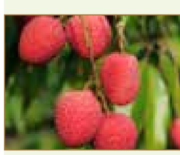
समाधान — 33
बदलते मौसम में लीची की खेती
विनोद कुमार

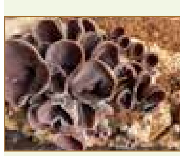
उद्यमिता — 38
जम्मू–कश्मीर में मशरूम का लाभकारी उत्पादन
सचिन गुप्ता, हेमा त्रिपाठी, मोनी गुप्ता **और** मेघा अबरोल

विषय सूची

रोकथाम 42

अमरूद में अंतरजाति संकरण से उकठा रोग का निदान

प्रदीप कुमार विश्वकर्मा, सी. वासुगी, एस. के. सिंह, ए. के. झा **और** पी. सी. त्रिपाठी

विधि 44

लहसुन की उन्नत खेती

अनिल खार, स्वाति साहा **और** भागचन्द शिवरान

जानकारी 48

मानसून में करें बागों की विशेष देखभाल

हरे कृष्ण, अरविंद कुमार सिंह, नृपेन्द्र विक्रम सिंह, विनय कुमार पटेल **और** शुभम कुमार तिवारी

आवरण–II

विकसित कृषि संकल्प अभियान

समृद्धि की दिशा में समेकित प्रयास

आवरण–III

सार–समाचार

- **काला बुखार के उपचार में कारगर हिमालयी हिसालू**
- **केले की फसल पर जलवायु संकट का गहरा प्रभाव**

निदेशक की कलम से

मानसून में नर्सरी लगाना - हरियाली से रोजगार

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी रोजगार की कमी एक बड़ी चुनौती है। ऐसे में नर्सरी उत्पादन न केवल पर्यावरण संरक्षण में सहायक है, बल्कि यह स्थानीय स्तर पर स्थायी रोजगार के अवसर भी प्रदान करता है। यह क्षेत्र कम लागत में शुरू होने वाला, कम जोखिम वाला और दीर्घकालिक लाभ देने वाला व्यवसाय बन चुका है। एक अच्छी तरह से संचालित नर्सरी से स्थानीय बाजारों, सरकारी वृक्षारोपण योजनाओं, स्कूलों और बागवानी के शौकीन लोगों को पौधे बेचे जा सकते हैं। यह युवाओं और महिलाओं के लिए स्वरोजगार का बेहतरीन मौका बन सकता है।

मानसून में नर्सरी उत्पादन केवल एक कृषि गतिविधि नहीं, बल्कि पर्यावरण में सुधार, आर्थिक सशक्तिकरण और समाज में हरियाली लाने का सशक्त माध्यम है। इसे वैज्ञानिक तरीके से अपनाकर आजीविका के साथ-साथ धरती को हरा-भरा बनाने की दिशा में यह एक सशक्त और सकारात्मक कदम होगा।

मानसून की हर बूंद अमूल्य है और इसका अधिकतम उपयोग तभी संभव है जब हम इसे हरियाली में बदलें। मानसून न केवल किसानों के लिए खेती का सबसे उपयुक्त समय होता है, बल्कि यह वृक्षारोपण और नर्सरी लगाने के लिए भी आदर्श समय होता है। जब प्रकृति स्वयं जल की आपूर्ति कर रही होती है, तब पौधों की जड़ें गहराई तक जाकर मजबूती से जम सकती हैं। इस मौसम में नर्सरी लगाने का निर्णय न केवल पर्यावरण के हित में होता है, बल्कि यह आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी लाभदायक साबित हो सकता है।

नर्सरी लगाकर पौधों की उपलब्धता सुनिश्चित करना समय की मांग है। मानसून के दौरान नमी, तापमान और मृदा की स्थिति पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए उपयुक्त होती है। फलदार, छायादार, औषधीय और सजावटी पौधों की नर्सरी इस मौसम में लगाई जाए तो उनमें जीवित रहने और बढ़वार की संभावना अधिक होती है। मानसून में नर्सरी लगाना एक बुद्धिमत्तापूर्ण और पर्यावरण हितैषी निर्णय है। मानसून केवल एक मौसम नहीं है, यह प्रकृति का आहवान है कि हम हरियाली की ओर चलें।

कृषि स्नातक युवा फूलों की नर्सरी, औषधीय पौधों की नर्सरी या ई-नर्सरी प्लेटफार्म शुरू कर डिजिटल रूप से भी रोजगार सृजन कर सकते हैं। कई सरकारी योजनाओं (जैसे मनरेगा, राष्ट्रीय बागवानी मिशन, स्टार्टअप इंडिया) के अंतर्गत नर्सरी के लिए वित्तीय सहायता मिलती है। यह कार्य ग्रामीण युवाओं, महिलाओं और शिक्षित बेरोजगारों के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता का एक मजबूत स्तंभ बन सकता है। सरकार और निजी संस्थाओं को चाहिए कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं को नर्सरी प्रबंधन के लिए प्रशिक्षित करें। यह न केवल उन्हें आत्मनिर्भर बनाएगा, बल्कि स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर भी उत्पन्न करेगा। आइए, नर्सरी उत्पादन को अपनाकर हम हरियाली के साथ समृद्धि की ओर कदम बढ़ाएं।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

गुणों से भरपूर नागफनी फल

बृज लाल अत्री

बढ़ते वैश्विक तापमान के कारण देश के कई हिस्से सूखे की चपेट में आ रहे हैं। इससे फसलों पर विपरीत असर पड़ रहा है तथा उत्पादन में कमी आ रही है। सूखे एवं पानी की कमी वाले क्षेत्रों में ऐसी फसलों को उगाने की आवश्यकता है, जिनके लिए पानी की मात्रा का उपयोग कम हो। इसके लिए नागफनी (कैक्टस) एक बहुत अच्छा विकल्प है। कैक्टस एक प्राचीन ग्रीक शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है एक कांटेदार पौधा इसका मूल स्थान मैक्सिको है। कैक्टस (नागफनी) का पौधा जो कांटों से भरा होता है, देखने में भले ही अच्छा न लगे, लेकिन सेहत की दृष्टि से इसमें लगे फल काफी लाभकारी साबित हो सकते हैं।

नागफनी का फूल कसैले स्वाद वाला जबकि फल काफी रसीला होता है। इसके फूल अप्रैल-सितम्बर माह में खिलते हैं तथा फल नवम्बर-दिसम्बर में तैयार हो जाते हैं। फलों को कच्चा खाने के अलावा अनेक प्रकार के उत्पाद बनाकर भी सेवन किया जा सकता है। इसके सेवन से बवासीर, खून की कमी और मोटापे जैसी परेशानी को कम किया जा सकता है।

नागफनी के फलों में कई तरह के विटामिन और प्रति-ऑक्सीकारक (एंटीऑक्सीडेंट्स) पाए जाते हैं। इसके अलावा इसमें विटामिन सी, विटामिन ई, विटामिन के, फोलेट, विटामिन बी 6, राइबोफ्लेविन, नियासिन, आयरन, बीटा कैरोटीन, पोटेशियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम तथा फॉस्फोरस भरपूर मात्रा में होते हैं। इसके फलों में अमीनो अम्ल, फैटी एसिड, पॉलीफेनोल्स और फ्लेवोनोइड जैसे कई लाभकारी पोषक तत्व मौजूद होते हैं। इसके फल शरीर से कई तरह की परेशानियों को दूर करने में लाभकारी साबित हो सकते हैं।

भावी समय में घटते पानी जैसे संसाधनों, बढ़ते मरुस्थलीकरण, बढ़ती जनसंख्या तथा बढ़ते वैश्विक तापमान के कारण परम्परागत फसलों की पैदावार कम होने लगेगी तथा ऐसे क्षेत्रों में कम पानी की जरूरत वाली फसलों को उगाना ही लाभकारी होगा।

विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार, विश्व में नागफनी की लगभग 130 पीढ़ियाँ हैं जिनके अंतर्गत लगभग 1500 किस्मों की जानकारी है लेकिन 10-12 किस्मों की खेती फलों, कोमल क्लैडोड, चारे या रंग इत्यादि के लिए की जा रही है। विश्व में मैक्सिको, इटली, ग्रीस, लीबिया, अल्जीरिया, इजिप्ट, यमन, ब्राजील, टर्की, फ्रांस, सऊदी अरब, सीरिया, इजराइल, अमेरिका जैसे देशों में इसकी व्यावसायिक खेती की जा रही है।

अत्यधिक गर्म क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के आहार के लिए नागफनी एक बहुत अच्छा

बहुउपयोगी

कैक्टस का सजाने के साथ-साथ हर हिस्सा काम में आता है जैसे जड़ से आयुर्वेदिक औषधियां बनती हैं। फल-फूल और गूदे को खा सकते हैं तथा इससे सब्जी, शरबत और सलाद भी बना सकते हैं। इसके कांटे इतने मजबूत होते हैं कि संस्कृत में इसका नाम ही वज्रकंटका रख दिया गया है। इन कांटों से ही पहले बच्चों के कान छेदे जाते थे। ऐसा माना जाता था कि कैक्टस के कांटों से कान नहीं पकते। ल्यूकोरिया और गोनोरिया जैसे रोगों में भी इसके फल फायदेमंद माने जाते हैं। इसकी जड़ के साथ मेथी, अजवायन, सोंठ का काढ़ा बनाकर पीना गठिया और सूजन में फायदेमंद होता है। इसके फल खाने से कब्ज और अल्सर से भी राहत मिलती है। इसमें मौजूद पोषक तत्व उच्च रक्तचाप, रक्तशर्करा और कोलेस्ट्रॉल स्तर को नियंत्रित करते हैं।

प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी), भाकृअनुप-खुंभ अनुसंधान निदेशालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश

पौधा है जो न केवल रसीले फल प्रदान करता है बल्कि इसके अन्य भाग आहार के अलावा दवाइयों में भी इस्तेमाल किये जाते हैं।

नागफनी को अनेक नामों जैसे कांटेदार नाशपाती, कैक्टस नाशपाती, कांटेदार नाशपाती फल, नोपल फ्रूट, टूना, सबरा, बरबरी नाशपाती और भारतीय अंजीर इत्यादि से भी जाना जाता है। इसके गूदेदार पत्तों को क्लैडोड या नोपल कहा जाता है जबकि फलों को तूना।

क्लैडोड का सेवन सब्जी, सलाद, अचार इत्यादि में होता है। नागफनी के फल अंडाकार, लम्बी बेरी के आकार में पाए जाते हैं जो रसीले गूदे एवं बीज से भरे होते हैं। इसके फल साधारणतया लाल, बैंगनी, नारंगी, पीले तथा हरे रंग में पाए जाते हैं। फल में 45-65% गूदा पाया जाता है जिसमें 84-90% तक पानी की मात्रा होती है। क्लैडोड में पैक्टिन, लसदार पदार्थ, खनिज, पॉलीफिनोल, विटामिन, वसा, अमीनो अम्ल भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। नागफनी के फलों से बनने वाले मूल्यवर्धित उत्पाद, पोषण सुरक्षा के साथ-साथ मानव स्वास्थ्य के लिए पूरक बन सकते हैं।

नागफनी पौधा फलों के साथ

स्वास्थ्य सम्बंधी लाभ

दिल को रखे स्वस्थ: फलों में मौजूद प्रति-ऑक्सीकारक (एंटीऑक्सीडेंट्स) शरीर में ट्राइग्लिसराइड्स और उच्च कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करते हैं। इतना ही नहीं इसके फल शरीर में विषाक्त पदार्थों के हानिकारक प्रभाव को कम करके हृदय की रक्षा करते हैं जिससे दिल से जुड़ी समस्याएं होने की आशंका कम हो जाती है। इसमें मौजूद फाइबर शरीर में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने और रक्तचाप को बनाए रखने में मदद करता है। यह पोटेशियम रक्त वाहिकाओं पर दबाव को कम कर सकता है।

कांटेदार नागफनी के नियमित सेवन से रक्तचाप का स्तर सामान्य बना रहता है और उच्च रक्तचाप से राहत मिलती है। इस फल में पाया जाने वाला बीटालेन रक्त वाहिकाओं की आंतरिक कोशिकाओं को भी मजबूत करता है, जिससे हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में मदद मिलती है।

मोटापा करे कम: प्रति-ऑक्सीकारक शरीर में अतिरिक्त वसा को कम करके चयापचय (मेटाबॉलिज्म) को बढ़ाते हैं जिसके कारण नागफनी के फलों का इस्तेमाल करना स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद हो सकता है।

कांटेदार नाशपाती के फल में फाइबर होता है जो लंबे समय तक भूख को नियंत्रित रखता है। चूंकि आंतों को आहार वसा को अवशोषित करने का मौका नहीं मिलता है, इसलिए यह फल वजन घटाने में भी प्रभावी रूप से मदद करता है। कांटेदार नाशपाती में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट्स जैसे फ्लेवोनोइड्स, क्वेरसेटिन, गैलिक एसिड, फेनोलिक यौगिक, बीटासायनिन आदि मुक्त कणों और सूजन उत्पन्न करने वाले यौगिकों को नष्ट करते हैं। इस प्रकार कोलन को साफ और सुरक्षित रखते हैं तथा कब्ज को रोकते हैं। क्वेरसेटिन, विशेष रूप से, कैंसर कोशिकाओं के विघटन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

फलों में भरपूर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं जो लीवर पर होने वाले ऑक्सीडेटिव तनाव को कम कर सकते हैं।

खांसी-जुकाम से आराम: इस परेशानी को दूर करने के लिए नागफनी के फलों का सेवन किया जा सकता है। इसके लिए करीब 10 मि.ली. रस में 1 चम्मच शहद मिलाकर सेवन करने से सर्दी, खांसी और जुकाम की समस्या से आराम मिलता है।

मधुमेह पर नियंत्रण: नागफनी के फलों का सेवन करने से मधुमेह को भी नियंत्रित किया जा सकता है। इसके फलों या अर्क का सेवन उच्च रक्त शर्करा के स्तर को कम करने के साथ-साथ सामान्य स्तर को बनाए रख सकता है।

पाचन स्वास्थ्य के लिए बेहतर: नागफनी का फल पाचन शक्ति को बेहतर करने में मददगार होता है। इसमें बेटालिन और पोटेशियम भरपूर मात्रा में मौजूद होता है। पोटेशियम शरीर में आहार को सही तरीके से अवशोषित करने में मददगार होता है वहीं, बेटालिन में एंटी-इंफ्लेमेटरी गुण मौजूद होता है, जो पाचन तंत्र को सुरक्षित रखने में असरदार है।

फलों की ऊपरी कांटेदार सतह को

नागफनी

कांटेदार नाशपाती एक फल है जो ओपंटिया जीनस से संबंधित नोपेल्स कैक्टि की पत्तियों पर उगता है। इसका वैज्ञानिक नाम *ओपंटिया फिकस-इंडिका* है। इसे हिंदी में नागफनी, तेलुगु में नागजेमुडु, मलयालम में कल्लिमुल्लपजम और गुजराती में डिंडला के नाम से भी जाना जाता है। नागफनी एक हल्का हरा, लाल या नारंगी फल है। इसकी सतह पर छोटे कांटे और गहरा लाल गूदा होता है। इसका स्वाद कीवी या तरबूज जैसा होता है। यह बालों का झड़ना कम करता है, वजन घटाने में मदद करता है तथा त्वचा को निखारता है। इसके प्रतिदिन 2 से 3 फलों का सेवन किया जा सकता है। अधिक सेवन से सूजन, दस्त, नाक में सूजन और सिरदर्द हो सकता है। कांटेदार नाशपाती एक बेलनाकार फल है जिसमें कांटों के साथ एक मजबूत बाहरी त्वचा और नरम आंतरिक गूदा होता है, जो खाद्य होता है। यह शुरू में हरा होता है और अधिकांश पौधों में परिपक्व होने पर लाल-गुलाबी हो जाता है। इसे कच्चा, उबालकर या ग्रिल करके खाया जा सकता है। इसका उपयोग जूस और जैम बनाने के लिए भी किया जाता है। इसके स्वादिष्ट, अंडाकार फल कांटेदार कैक्टस के पत्तों के शीर्ष से अंकुरित होते हैं और गहरे लाल-हरे से पीले या बैंगनी रंग के विभिन्न रंगों में होते हैं। कांटेदार नाशपाती का पौधा शुष्क मौसम की स्थिति में जीवित रह सकता है। यह फल न केवल अपने स्वाद के लिए बल्कि स्वास्थ्य लाभों के लिए भी पसंद किया जाता है।

हटाकर इसके अंदर नर्म गूदे को खाया जाता है। इसके फलों को स्लाइस करके, जैम या जैली बनाकर भी इस्तेमाल किया जा सकता है। स्वाद बढ़ाने के लिए इसमें नीबू रस मिलाकर लिया जा सकता है।

कोलेस्ट्रॉल कम करने में मददगार

वजन घटाने के मामले में आगे बढ़ते हुए, कांटेदार नागफनी रक्त में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में भी मदद कर सकती है। इसके फाइबर (पेक्टिन) तत्व को इसके लिए उपयोगी माना जा सकता है क्योंकि यह शरीर से एलडीएल कोलेस्ट्रॉल को खत्म करने में मदद करता है। प्रयोगों से पता चला है कि कांटेदार नागफनी कोलेस्ट्रॉल के प्लाज्मा स्तर और यकृत स्तर दोनों को कम कर सकती है।

कैंसर नियंत्रण

कांटेदार नागफनी में मौजूद फ्लेवोनॉयड यौगिक स्तन, प्रोस्टेट, पेट, अग्नाशय, डिम्बग्रंथि, गर्भाशय ग्रीवा और फेफड़ों के कैंसर के जोखिम को कम करते हैं।

अल्सर से बचाव

फल में पाया जाने वाला बीटानिन नामक यौगिक गैस्ट्रिक म्यूकस के उत्पादन को नियंत्रित करता है जिसके परिणामस्वरूप, कांटेदार नागफनी के सेवन से अल्सर होने की आशंका बहुत कम हो जाती है।

प्रतिरक्षा प्रणाली बूस्टर

यह सफेद रक्त कोशिकाओं के उत्पादन को बढ़ाता है जो शरीर से संक्रामक सूक्ष्मजीवों को नष्ट करते हैं। फल में मौजूद विटामिन सी एक एंटीऑक्सीडेंट के रूप में भी काम करता है और पूरे शरीर में मुक्त कणों से होने वाले नुकसान को कम करता है। यह प्रतिरक्षा प्रणाली को भी बढ़ावा देता है।

हड्डियों और दांतों की मजबूती

हमारे दांत और हड्डियाँ कैल्शियम से बनी होती हैं, और आहार इस खनिज का एकमात्र स्रोत है। हमारा शरीर स्पष्ट रूप से कैल्शियम को स्वयं संश्लेषित नहीं कर सकता है। कांटेदार नागफनी के 100 ग्रा. ताजे फल में 83 मि.ग्रा. कैल्शियम होता है जिसका सेवन हड्डियों और दांतों को मजबूत करने में मददगार है।

औषधीय गुणों से भरपूर फल

नाखूनों को स्वस्थ बनाना

कांटेदार नागफनी के बीज के तेल का उपयोग सूखे और क्षतिग्रस्त नाखूनों को स्वस्थ करने के लिए किया जा सकता है। इसमें लिनोलिक, ओलिक और पामिटिक जैसे मॉइस्चराइजिंग फैटी एसिड होते हैं।

कांटेदार नागफनी का सेवन

- ठंडे पानी का उपयोग करके एक छलनी में फल को अच्छी तरह से धो लें। ऐसा करते समय इसे धीरे-धीरे घुमाते रहें ताकि सभी कांटे निकल जाएं।
- जब सभी कांटे निकल जाएं, तो एक मुलायम नैपकिन का उपयोग करके फल को हल्के हाथों से सुखाएं।
- एक तेज चाकू द्वारा फल के ऊपरी और निचले हिस्से को काटकर फेंक दें।
- छिलका उतारने के लिए इसे लंबाई में काटें ठीक उसी तरह जैसे संतरे को छीलते हैं।
- अपनी पसंद के अनुसार फल को काटें या टुकड़े करें और खाएं। हालांकि इसके बीज खाने के लिए सुरक्षित हैं, लेकिन

एंटी-एजिंग गुण

बीजों के तेल में त्वचा को नमी देने वाले और पोषण देने वाले फैटी एसिड भी अच्छी मात्रा में होते हैं जो झुर्रियों और महीन रेखाओं को बनने से रोकते हैं। इस प्रकार कांटेदार नागफनी का तेल एक अच्छा एंटी-एजिंग एजेंट बन जाता है। इस तेल का इस्तेमाल अक्सर त्वचा को चमकदार बनाने वाले गुणों के लिए भी किया जाता है। इसमें पाया जाने वाला लिनोलिक एसिड, जो एक फैटी एसिड है, न केवल त्वचा को पोषण देता है बल्कि सुस्ती को भी दूर करता है। यह त्वचा को पराबैंगनी विकिरण से भी बचाता है। इसके अलावा बीजों का तेल शुष्क त्वचा को नमी प्रदान करता है। लिनोलिक, ओलिक और पामिटिक फैटी एसिड, जो कांटेदार नागफनी के बीज के तेल में प्रमुख अनुपात में पाए जाते हैं, त्वचा को उन तेलों की आपूर्ति करते हैं जिनकी कमी त्वचा में होती है। इसके तेल में फेनोलिक यौगिक भी अच्छी मात्रा में पाए जाते हैं, जो त्वचा पर एंटीऑक्सीडेंट प्रभाव डालते हैं और क्षतिग्रस्त त्वचा को स्वस्थ करने में मदद करते हैं जैसे कट के घाव, निशान और अन्य दाग जो विभिन्न कारणों से बन गए हैं, समय के साथ ठीक होकर फीके पड़ जाते हैं। आँखों के नीचे काले घेरे कई कारणों से बनते हैं जैसे नींद की कमी, निर्जलीकरण और ऑक्सीडेटिव तनाव मुख्य कारक हैं जो आँखों के नीचे के क्षेत्र को सुस्त और नीले-बैंगनी रंग का बना सकते हैं। इसका नियमित उपयोग इस समस्या में भी प्रभावी है। इसके फल और इसके बीजों से प्राप्त तेल दोनों का उपयोग बालों की बनावट को चिकना करने, बालों का झड़ना कम करने, बालों की वृद्धि बढ़ाने और बालों के समग्र स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए किया जा सकता है।

प्रसंस्करण में संभावनाएं

क्लैडोड के अलावा नागफनी के फलों से अनेक मूल्यवर्धित उत्पाद जैसे जैम, जूस, नैक्टर, जूस कंसन्ट्रेट, अचार इत्यादि बनाये जा सकते हैं। नागफनी की खेती अत्यधिक गर्म इलाकों जहाँ सर्दियाँ ठण्डी लेकिन सूखी हों, में किसी भी मिट्टी में की जा सकती हैं। रोपाई का मौसम फरवरी-अप्रैल तथा जुलाई-सितम्बर में रहता है। पौध प्रवर्धन वानस्पतिक या ऊत्तक संवर्धन द्वारा किया जा सकता है। रिपोर्टों के अनुसार पूर्ण विकसित पौधे से 3-4 वर्ष उपरांत 800-1000 रुपये प्रति पौधा कमाई की जा सकती है। खाद्य उत्पादों के अलावा नागफनी का इस्तेमाल शैम्पू, कंडीशनर, बॉडी लोशन, साबुन, हेयर जैल, धूप से बचने वाले उत्पादों के रूप में किया जा सकता है। इसके लिए फार्मास्युटिकल क्षेत्र में काम करने की आवश्यकता होगी। आने वाले समय में इसका उपयोग अन्य उत्पादों जैसे क्रीम, रेशा, गोंद तथा कपड़ा उद्योग के लिए रंग बनाने के लिए किया जा सकेगा।

नागफनी के बैंगनी रंग के रसीले फल

सख्त होने के कारण इन्हें नापसंद किया जाता है।

कांटेदार नाशपाती के दुष्प्रभाव

- पेट खराब होना, दस्त, सूजन और सिरदर्द सबसे आम दुष्प्रभाव हैं।
- इससे एलर्जी के कारण नाक में सूजन या अस्थमा हो सकता है।
- भुने हुए नोपल के तने को खाने से अत्यधिक हाइपोग्लाइसेमिक प्रभाव हो सकता है। कच्चे तने या पके फल खाने पर ऐसा नहीं देखा जाता है।
- मूत्रवर्धक गुणों के कारण यह शरीर की कुछ दवाइयों को अवशोषित करने की क्षमता में लाभकारी है।
- गर्भवती या स्तनपान करवाने वाली महिलाओं को किसी भी रूप में कांटेदार नाशपाती का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि यह भ्रूण या बच्चे के विकास में बाधा उत्पन्न कर सकता है।

औषधीय लाभ

नागफनी स्वाद में कड़वी, पचने पर मधुर और प्रकृति में बहुत गर्म होती है। नागफनी कफ को निकालती है, हृदय के लिए लाभकारी होती है। यह खून को साफ करती है, दर्द तथा जलन में आराम देती है और खून का बहना रोकती है। नागफनी खाँसी, पेट के रोगों और जोड़ों की सूजन तथा दर्द में लाभ पहुँचाती है। इसके फूल कसैले होते हैं। इसका तना तासीर में ठंडा और स्वाद में कसैला होता है। तना हल्का विरेचक, भूख बढ़ाने वाला और बुखार तथा विष को नष्ट करने वाला होता है।

- नागफनी के तने के गूदे को पीसकर आँखों के बाहर चारों तरफ लगाने से आँखों के अनेक रोग ठीक होते हैं।
- आँखों में लाली की समस्या हो तो नागफनी के तने से कांटे साफ कर दें और फिर बीच में से फाड़ लें। इसके गूदे वाले भाग को कपड़े में लपेट कर आँखों पर रखने से लाभ होता है।
- शरीर में खून की कमी होने से शरीर का रंग पीला दिखने लगता है और कमजोरी भी आती है। इसमें नागफनी का प्रयोग लाभकारी हो सकता है।
- आयु बढ़ने से पौरुष ग्रंथि का बढ़ना, पुरुषों में होने वाली एक आम परेशानी है। प्रोस्टेट ग्रंथि बढ़ने के कारण पेशाब करने में परेशानी होती है जो प्रोस्टेट कैंसर के प्रमुख लक्षण हैं। नागफनी के फूलों के चूर्ण का सेवन करने से प्रोस्टेट ग्लैण्ड के बढ़ जाने की समस्या दूर होती है।
- नागफनी में संक्रमण प्रतिरोधी गुण होते हैं जिसके कारण यह अनेक चर्मरोगों में काम आता है। नागफनी के तने के गूदे को पीसकर घाव पर लगाने से यह शीघ्र ठीक हो जाता है।
- नागफनी को पीसकर त्वचा पर लगाने से दाद, खुजली आदि चर्म रोगों और चोट के कारण हुई सूजन तथा जलन भी ठीक होते हैं।
- यदि फोड़े कच्चे हों और पक न रहे हों तो नागफनी के पत्तों को पीसकर गुनगुना गर्म करके फोड़ों पर लेप कर दें। फोड़े शीघ्र पककर फूट जाएंगे।

नागफनी की अधिकतर किस्मों में छोटे एवं बड़े दोनों प्रकार के कांटे पाए जाते हैं जिसके कारण क्लैडोड एवं फलों की तुड़ाई काफी मुश्किल होती है। फलों एवं क्लैडोड पर बहुत छोटे व नुकीले कांटे समूह में पाए जाते हैं जो खेत काम करते समय शरीर के अनेक अंगों में चुभ जाते हैं इन्हें निकालना काफी मुश्किल होता है। वर्तमान समय में ऐसी किस्मों के संवर्धन की आवश्यकता है जिनमें इस प्रकार की समस्या न हो जिससे क्लैडोड को सब्जी बनाने के अलावा पशुओं के चारे के लिए भी उपयोग किया जा सके। अतः नागफनी अति लाभकारी फल है। ■

पर्वतीय क्षेत्रों में गैर-मौसमी सब्जी उत्पादन

रेनू सनवाल[1], **राहुल देव**[2], **निर्मल हेडाऊ**[3] और **लक्ष्मी कान्त**[4]

गैर-मौसमी सब्जियों की खेती से तात्पर्य उनके विशिष्ट फसल चक्र के बाहर ताजा सब्जियों के उत्पादन से है, यानि जब आपूर्ति कम होती है और कीमतें अधिक होती हैं। सरल शब्दों में मुख्य मौसम की शुरुआत या अंत में सब्जी उत्पादन को बेमौसमी सब्जी उत्पादन कहते हैं। गैर-मौसमी सब्जी उगाने की अवधारणा उत्पादकों के लिए नई है और उन्हें इसकी खेती करने से पहले इसके बारे में जानना आवश्यक है। यह आधुनिक प्रथाओं में से एक है, जो किसानों को अधिक लाभ दे सकती है और अधिक विकल्पों के साथ किसी भी समय कहीं भी उपभोक्ताओं की आवश्यकता को पूरा कर सकती है। गैर-मौसमी सब्जियों की खेती का मुख्य उद्देश्य बाजार में सब्जी की आपूर्ति को पूरा करना है।

बेमौसमी सब्जी उत्पादन करने के कई तरीके हैं जैसे कि रोपाई के समय को समायोजित करके, अगेती या पछेती किस्मों का चयन करके, विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों का उपयोग करके, उपयोगी वातावरण बनाकर पॉलीहाउस में खेती करके आदि। इन सभी का विस्तरित वर्णन इस प्रकार है:

रोपाई के समय को समायोजित कर बेमौसमी सब्जी उत्पादन

उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में गर्मी और बरसात के मौसम में पहाड़ी सब्जियों की बहुत मांग होती है। यदि पर्वतीय कृषक रोपाई के समय को इस तरह से समायोजित करके खेती करें कि फसल की बिक्री मैदानी इलाकों में मार्च से अक्टूबर के महीनों में कर सकें, तो उत्पादन का अधिक मूल्य पाया जा सकता है। मैदानी इलाकों में गर्म जलवायु दशाओं के कारण इन महीनों में सब्जी उत्पादन कम होता है। जबकि उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र अनुकूल कृषि-जलवायु परिस्थितियों से संपन्न हैं और इसमें सब्जियां, जैसे- टमाटर, शिमला मिर्च, हरी मटर, फ्रांसबीन, आलू, पत्तागोभी, फूलगोभी, खीरा के उत्पादन की अपार संभावनाएं हैं जो गर्मी के मौसम में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। इसके अलावा पारंपरिक अनाज फसलों की तुलना में बेमौसमी सब्जियों की खेती अधिक लाभकारी है।

किस्मों का चयन

मुख्य मौसम से पहले या बाद में सब्जियों के उत्पादन के लिए अगेती या पछेती संकर किस्मों का उपयोग करना चाहिए। इन किस्मों के उपयोग से सब्जी का उत्पादन अधिक समय तक किया जा सकता है और वर्ष भर सब्जी उपलब्ध हो सकती है। उदाहरण के लिए फूलगोभी में **अगेती किस्में:** पूसा हिमज्योति, अर्ली, कुंवारी, पूसा दीपाली, पूसा अर्ली सिंथेटिक, पंत गोभी 2, पंत गोभी 3, स्नो किंग आदि जल्दी तैयार होने वाली किस्में हैं इनकी औसत उपज 80-120 क्विंटल/हैक्टर है।

पछेती किस्में: पूसा स्नोबॉल 1, पूसा स्नोबॉल के-1, पालम उपहार हैं। इनकी उपज 175-250 क्विंटल/हैक्टर हो जाती है। दोनों ही तरह की किस्मों का बाजार में अधिक मूल्य मिलता है।

जलवायु परिस्थितियों का उपयोग

पहाड़ी क्षेत्र बेमौसमी सब्जियों की खेती के लिए देश में प्राकृतिक पॉलीहाउस जैसी बेहतर स्थिति प्रदान करते हैं। यहां के किसान बुआई के समय को, सामान्य बुआई के समय से आगे बढ़ाकर या पहले करके अधिक

[1]मुख्य तकनीकी अधिकारी; [2]वैज्ञानिक; [3]प्रभागाध्यक्ष, फसल सुधार; [4]निदेशक, भाकृअनुप-विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा

पॉलीहाउस में बेमौसमी सब्जी उत्पादन के लाभ

- बेमौसमी सब्जी की खेती से छोटे और सीमांत किसानों को फायदा होगा।
- पूर्ण पर्यावरण नियंत्रण वाले पॉलीहाउस में बाजार की मांग को पूरा करने के लिए कुछ फसलें वर्ष भर उगाई जा सकती हैं।
- उपज की बेहतर गुणवत्ता और उच्च उत्पादकता प्राप्त होती है।
- फसल के उत्पादन की अवधि अधिक होती है एवं इससे फसल का अधिक मूल्य मिलता है।
- पानी और पोषक तत्वों जैसे बहुमूल्य आदानों का कुशल उपयोग होता है।
- रोगों एवं कीटों के विरुद्ध प्रभावी नियंत्रण होता है।
- खरपतवार नियंत्रण पर खर्च में कमी आती है।
- अधिक बारिश, ओलावृष्टि, जंगली पशुओं से फसल की सुरक्षा होती है।

लाभ प्राप्त कर सकते हैं। ये 400 से 2000 मीटर की ऊंचाई वाले पहाड़ी क्षेत्र, बेमौसमी सब्जी उत्पादन के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। जैसे कि मध्य पहाड़ी और तराई क्षेत्रों में बैंगन, टमाटर, शिमला मिर्च और खीरा जैसी सब्जियां सर्दियों और वसंत ऋतु में उगाई जा सकती हैं। इनकी मैदानी इलाकों, मध्य एवं उच्च पहाड़ी क्षेत्रों के बाजारों में आपूर्ति की जा सकती है। जबकि, उच्च पहाड़ी क्षेत्रों में गर्मी के मौसम में आलू, फूलगोभी, बंदगोभी, मूली, मटर और पत्तेदार सब्जियों का उत्पादन कर सकते हैं और मध्य पहाड़ी एवं मैदानी इलाकों के बाजारों में आपूर्ति कर सकते हैं।

ब्रोकोली का सफल उत्पादन

खुले खेत में उत्पादन के लाभ

- पहाड़ी क्षेत्रों में उगाई गयी बेमौसमी सब्जियां अपने स्वाद, सुगंध और पौष्टिक प्रकृति के कारण एक विशेष महत्व रखती हैं। पहाड़ की कृषि जलवायु, गर्मी और बरसात के मौसम में भी खेती के लिए अनुकूल होती है, जबकि उच्च तापमान (गर्मी) और अधिक बारिश (बरसात) के कारण ये सब्जियां भारत के मैदानी इलाकों में अच्छी तरह से उगाई नहीं जा सकती और मार्च से अक्टूबर महीनों में इन क्षेत्रों में सब्जियों की आपूर्ति कम हो जाने से पहाड़ी क्षेत्रों में उगाई गयी बेमौसमी सब्जियों की मांग मैदानी क्षेत्रों में अधिक होती है और इसलिए किसानों को अपनी सब्जियों की अधिक कीमत मिलती है।
- उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में विदेशी सब्जियों जैसे ब्रोकोली, यूरोपीय गाजर, चाइनीज गोभी, लेट्यूस, सेलेरी, लीक और सतवारी की बेमौसमी खेती भी आसानी से की जा सकती है। इनकी देश और विदेश में काफी मांग है। फलस्वरूप इससे कृषकों को अधिक मूल्य भी मिल सकता है।

मटर की फलियां

- औसतन, बेमौसमी सब्जी उत्पादन में वर्ष में 2-3 फसलें 3-4 लाख रुपए का लाभ दे सकती हैं जबकि, एक अच्छी तरह से प्रबंधित फल के बाग से एक वर्ष में 1-2 लाख रुपए का लाभ ही मिल पाता है, इसलिए बेमौसमी सब्जी उत्पादन से किसानों के जीवन स्तर में सुधार की अपार संभावनाएं हैं।
- बेमौसमी सब्जियां क्षेत्रफल और समय की प्रति इकाई में अधिक उपज देती हैं, क्योंकि ये सब्जियां बहुत तेजी से बढ़ती हैं और किसानों को कम समय में अधिक आय प्रदान करती हैं।
- बेमौसमी सब्जी की खेती के कारण, अधिक सब्जी उत्पादन से न केवल लोगों के स्वास्थ्य में सुधार होगा बल्कि इससे खाद्य समस्या को भी हल करने में मदद मिलेगी।

फ्रांसबीन की उन्नत खेती

किसानों को लाभ

- बेमौसमी सब्जी की खेती से छोटे और सीमांत किसानों को फायदा होगा।
- इससे किसान परिवार के सदस्य पूरे साल काम पर रहते हैं। इससे बेरोजगारी की समस्या से निपटने में मदद मिलती है।
- शिक्षित युवा किसान विशेष सब्जी जैसे की विदेशी सब्जियों के उत्पादन की नयी तकनीकों का अध्ययन कर सकते हैं और अधिक लाभ कमा सकते हैं।
- बेमौसमी खेती से मिला प्रारंभिक लाभ किसानों में विश्वास उत्पन्न करता है, इससे नए किसान बेमौसमी सब्जी की खेती को मुख्य पेशा बना सकते हैं।

फूलगोभी की बेमौसमी खेती

- उपभोक्ता आजकल ताजा सब्जियां पसंद करते हैं भले ही उनका मौसम न हो। ऐसी स्थिति में बेमौसमी सब्जियों की खेती इस जरूरत को पूरा कर सकती है।

जब खुले मैदान में बेमौसमी सब्जियों की खेती संभव नहीं होती है, खासकर बरसात और अधिक गर्मी या सर्दी में, तब कृषक, पादप सुरक्षात्मक संरचनाएँ जैसे कि हॉट बेड, कोल्ड फ्रेम, पॉलिथीन टनल, ग्रीन हाउस, ग्लास हाउस और पॉलीहाउस, जो पौधों की वृद्धि के लिए प्राकृतिक वातावरण को संशोधित करके पौधों के लिए इष्टतम वातावरण प्रदान करते हैं, का उपयोग कर सकते हैं।

गर्मी से बचाव के लिए

कोल्ड फ्रेम, ग्रीननेट हाउस, हाईटेक पॉलीहाउस में खेती करके, बाहर की प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों जैसे उच्च तापमान, गर्म हवा, बारिश और बर्फ से सब्जियों की सुरक्षा प्रदान करके खेती कर सकते हैं।

ठंड में बचाव के लिए

अधिक ऊंचाई वाले ठंडे क्षेत्रों में कृषक प्लास्टिक टनल और प्लास्टिक मल्च, हॉटबेड, हाईटेक पॉलीहाउस, में खेती करके आलू, टमाटर, शिमला मिर्च, खीरा, ब्रोकोली, गांठगोभी, चाइनीज गोभी, लेट्यूस, सेलेरी, लीक जैसी सब्जियां को निम्न तापमान, ठंड, ओलों, बारिश और बर्फ से सुरक्षा प्रदान करके खेती कर सकते हैं।

सामान्यत: कृषि मौसम आधारित होती है। कुछ पर्वतीय क्षेत्रों में कृषकों ने गैर-मौसमी सब्जियों की खेती को प्राथमिक काम के रूप में अपना लिया है, जबकि पर्वतीय कृषकों की एक बड़ी संख्या ने अभी तक बेमौसमी सब्जी उत्पादन को नहीं अपनाया है। पर्वतीय क्षेत्र, बेमौसमी सब्जी उत्पादन और विदेशी सब्जियों के उत्पादन के लिए सबसे अनुकूल जलवायु परिस्थितियां प्रदान करते हैं। इनकी घरेलू बाजार के साथ-साथ पड़ोसी/खाड़ी देशों में भी काफी मांग है। यदि कृषक बेमौसमी सब्जियों की खेती अपनाते हैं, तो उनके जीवन स्तर में सुधार की काफी संभावनाएं हैं। मौसमी सब्जी उगाने से पारंपरिक फसलों की अपेक्षा कृषक 60,000 से 1,00,000 रुपये प्रति हैक्टर तक का शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

मटर की बेमौसमी खेती

निवेदन

लेखक बंधु *फल फूल* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो मौलिक होने के साथ जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

–संपादक

रजनीगंधा पुष्प की उन्नत खेती

कृष्ण पाल सिंह[1] और **मधु बाला**[2]

रजनीगंधा, विश्व के उष्ण और उपोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में उगाया जाने वाला एक व्यावसायिक फूल है। रजनीगंधा को अंग्रेजी में ट्यूबरोज कहते हैं और इसका वानस्पतिक नाम अगेव अमिका (*पोलिऐन्थस ट्यूबरोसा*) है। इसका उत्पत्ति स्थान मैक्सिको है और इसे अगेवेसी कुल में सम्मिलित किया गया है। भारत में रजनीगंधा को उष्ण और उपोष्ण जलवायु वाले लगभग सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में व्यावसायिक तौर पर उगाया जाता है। भारत में इसका व्यावसायिक उत्पादन प्रमुख रूप से पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश महाराष्ट्र, तमिलनाडु एवं उत्तर प्रदेश में किया जाता है। इस फूल की खेती मुख्यतया विच्छिन्न पुष्प, कर्तित पुष्प और निरपेक्ष उत्पादन के लिए की जाती है। आजकल रजनीगंधा का औषधीय पौधे के रूप में भी प्रचलन बढ़ रहा है। भारत, विश्व में रजनीगंधा के क्षेत्रफल और उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

फूलों में सुन्दरता के साथ-साथ अगर मधुर सुगंध भी मौजूद हो तो ऐसे फूलों की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है। ऐसे ही दोनों गुणों से युक्त एक फूल रजनीगंधा है। वाणिज्यिक फूलों की खेती में रजनीगंधा एक महत्वपूर्ण कन्दीय फूल है। रजनीगंधा शब्द रजनी (रात) और गंध (सुगंध/महक) दो शब्दों के मेल से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है रात में अपनी सुगंध फैलाने वाला फूल।

रजनीगंधा का सामान्य नाम 'ट्यूबर-ओज' है ना कि 'ट्यूबरोज', जिसका तात्पर्य गांठदार होता है, क्योंकि इसका गुणन/प्रवर्धन इसके भूमिगत गांठदार भाग यानि शल्ककंद/शल्ककंदिका (बल्ब/बल्बलेट) द्वारा किया जाता है। रजनीगंधा का वानस्पतिक नाम *पोलिऐन्थस ट्यूबरोसा* (लिनिअस) है।

रजनीगंधा की पुष्पदंडिका (स्पाइक)

पोलिऐन्थस वंश की विशेषता है कि इस वंश के पौधों में फूल जोड़ों (दो-दो) में पैदा होते हैं।

पौधा अर्ध-कठोर और बहुवर्षीय होता है। इसकी पत्तियाँ घास की तरह पतली, नोंकदार तथा 70 सें.मी. तक लम्बी होती हैं। इसके फूल को वैज्ञानिक भाषा में पुष्पक (फ्लोरेट) कहते हैं जो 30 से 185 सें.मी. लम्बी, सीधी और मजबूत कणिश/पुष्पदंडिका (स्पाइक) पर पैदा होते हैं।

रजनीगंधा का जेनरिक नाम पोलिऐन्थस दो शब्दों अर्थात पोलिओस और ऐन्थोस के मेल से बना है। पोलिओस का अर्थ चमक अथवा सफेद और ऐन्थोस का अर्थ फूल होता है अर्थात एक सफेद रंग का आकर्षक फूल।

उपयोगिता

रजनीगंधा को उद्देश्यों के अनुसार विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जा सकता है जैसे- कर्तित पुष्प (कट फ्लावर), विच्छिन्न

[1]प्रधान वैज्ञानिक (अ.प्रा.), पुष्पविज्ञान एवं भू-दृश्य निर्माण संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; [2]वैज्ञानिक, पुष्प विज्ञान एवं भू-दृश्य निर्माण विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, 141004 (पंजाब)

पुष्प (लूज फ्लावर), सुगन्धित इत्र, गमला संवर्धन एवं भू-दृश्य निर्माण आदि। रजनीगंधा को कर्तित पुष्प के रूप में फूलदान में सजाकर घरों, कार्यालयों, होटलों, भोजनालयों आदि के अन्दर रखने के लिए बहुत उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इसकी कणिशों पर पुष्पक 7-10 दिनों तक नीचे से ऊपर की ओर तक लगातार खिलते रहते हैं जिससे सम्पूर्ण कक्ष में मधुर सुगंध फैल जाती है।

कर्तित पुष्पों को पुष्पगुच्छ बनाने, वाहनों एवं इमारतों की दीवारों पर सजाने, आदि के लिए भी उपयोग में लाते हैं। इसके विच्छिन्न पुष्पों को विभिन्न तरह की मालायें बनाने, पूजा में चढ़ाने, इत्र निष्कर्षण, आदि में उपयोग किया जाता है। चॉकलेट से निर्मित पेय पदार्थो में इसके फूलों को शक्तिवर्धक औषधियों के साथ मिलाकर गर्म अथवा ठण्डा पिया जाता है। इसके शल्ककंदों में लाइकोरिन नामक एल्कालायड होता है जिसको प्रयोग करने से उल्टी हो जाती है। शल्ककंदों को हल्दी तथा मक्खन के साथ पीसकर पेस्ट तैयार कर कील-मुहासों को दूर करने में इसका उपयोग किया जाता है।

शल्ककंदों को सुखाकर पाउडर बनाकर इसका प्रयोग गोनोरिया रोग को दूर करने में किया जाता है। जावा देश में इसके फूलों को सब्जियों के जूस में मिलाकर खाया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में उपलब्ध इत्रों में सबसे महंगा प्राकृतिक इत्र रजनीगंधा का माना जाता है।

शल्ककंदों की बुआई का समय

रजनीगंधा की सफल खेती में शल्ककंद (बल्ब) को रोपने के उचित समय का पौधों की वानस्पतिक वृद्धि, पुष्पण तथा उपज पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। रोपने का उचित समय एक स्थान/जलवायु से दूसरे स्थान पर विभिन्न हो सकता है। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, गुजरात, बिहार तथा अन्य समान जलवायु वाले क्षेत्रों में शल्ककंदों की बुआई मध्य फरवरी से अप्रैल के महीनों के दौरान करनी चाहिए। बेंगलुरु और आसपास के क्षेत्रों में रजनीगंधा के शल्ककंदों के रोपने का उचित समय अप्रैल से जून होता है। हैदराबाद और कोयम्बटूर के आसपास इसके शल्ककंदों को जुलाई में बोना चाहिए। अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों में इसे नवम्बर-दिसम्बर में लगाने की सिफारिश की जाती है।

लाभकारी है रजनीगंधा का व्यावसायिक उत्पादन

किस्में

रजनीगंधा में विभिन्न प्रकार की किस्में उपलब्ध हैं इन्हें पुष्पक में उपस्थित दलपुंजों (पेटल्स) के विन्यास एवं पत्तियों में उपस्थित रंग-बिरंगापन (वेरिगेशन) तथा उगाये जाने वाले क्षेत्रों के आधार पर अनेक नामों से जाना जाता है। सामान्यतया इसकी किस्मों को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है:

सेमी-डबल (अर्धदोहरी)- इसमें पंखुड़ियां दो से तीन पंक्ति में होती हैं। इन्हें मुख्यता कर्तित पुष्पों के रूप में उपयोग किया जाता है उदाहरण- अर्का वैभव।

डबल (दोहरी)- इसमें पंखुड़ियों की तीन से ज्यादा पंक्तियाँ होती हैं। इनका उपयोग मुख्यतया कर्तित पुष्पों के रूप में किया जाता है। इसकी प्रमुख किस्मों में पर्ल डबल, स्वर्ण रेखा, हैदराबाद डबल, बिधान रजनी-24, अर्का सुवासिनी आदि प्रमुख हैं।

शबलित (वेरिगेटिडली)- इन किस्मों के पौधों की पत्तियों पर पीली, सफेद रंग की धारियां होती हैं। उदाहरण- रजत रेखा, स्वर्ण रेखा, सिक्किम सिलेक्शन आदि।

शबलित किस्में- राष्ट्रीय वानस्पतिक अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में सिंगल (मैक्सिकन सिंगल) और डबल (पर्ल डबल) किस्मों के शल्ककंदों को गामा किरणों से उपचारित करने के पश्चात दो नयी किस्में क्रमश: रजत रेखा और स्वर्ण रेखा विकसित की गई हैं।

यद्यपि उपरोक्त दोनों किस्मों की बहुत ज्यादा वाणिज्यिक उपयोगिता नहीं है परन्तु भू-दृश्य निर्माण और अन्य प्रकार के सौन्दर्यकरण में इनका महत्वपूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

जलवायु

रजनीगंधा के पौधों की समुचित वृद्धि एवं विकास के लिए खुली धूप अच्छी रहती है। इसे छायादार अथवा अर्ध-छायादार जगहों पर नहीं उगाना चाहिए वरना फूलों और शल्ककंदों की उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

भारत में इसकी खेती के लिए अधिक आर्द्रता एवं मध्यम तापमान उपयुक्त रहता है। बहुत अधिक (40 डिग्री सेंटीग्रेड से ऊपर) अथवा कम (10 डिग्री सेंटीग्रेड से नीचे) तापमान रहने से कणिशों की लम्बाई, पुष्पकों के भार एवं गुणवत्ता में कमी आ जाती है।

पौधों की उचित वृद्धि एवं विकास के लिए 20 से 30 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान उपयुक्त रहता है। पुष्प कलियों के समुचित आरम्भ, वृद्धि एवं विकास के लिए अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। लम्बे दिनों (16 घंटे) के दौरान वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है, प्रथम पुष्पण शीघ्र प्राप्त होता है तथा कणिशों की लम्बाई में बढ़ोतरी होती है। पौधों को कम प्रकाश मिलने से पत्तियों की गुणवत्ता में सुधार होता है बशर्ते कि उस दौरान अच्छा तापमान भी उपलब्ध हो। इसकी खेती समुद्रतल से 1000-1200 मीटर तक की ऊंचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में भी की जा सकती है।

मृदा का चयन

रजनीगंधा को विभिन्न प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है परन्तु इसकी खेती करने के लिए हल्की दोमट से लेकर चिकनी मिट्टी, जिसका पीएच मान 6.5-7.5 हो, अच्छी मानी जाती है। इसकी खेती क्षारीय से अम्लीय भूमि में भी की जा सकती है। भूमि 45 सें.मी. की गहराई तक

भुरभुरी, उत्तम जल निकास वाली, कार्बनिक पदार्थ एवं अन्य पोषक तत्वों की उचित मात्रा से युक्त होनी चाहिए। खेत में लगभग चार टन प्रति हैक्टर की दर से अच्छी तरह सड़ी गली हुई कम्पोस्ट खाद मिला दें। खेत की तैयारी के बाद उचित आकार की क्यारियाँ बना लेनी चाहिए।

बोने की प्रक्रिया

व्यावसायिक तौर पर रजनीगंधा को इसके भूमिगत भाग जिन्हें शल्ककंद अथवा शल्ककंदिका (बल्बलेट) स्थानीय भाषा में दर्रे कहते हैं, से प्रसारित किया जाता है। बेहतर गुणों वाले फूल प्राप्त करने के लिए 1.5 सें. मी. अथवा अधिक व्यास वाली पादप सामग्री का रोपण करना चाहिए। पादप सामग्री में 4 से 6 सप्ताह का सुषुप्तकाल रहता है। अतः बुआई के समय को ध्यान में रखते हुए पादप सामग्री को 4 से 6 सप्ताह पहले खोदकर उनका श्रेणीकरण करके, किसी छायादार जगह पर फैलाकर रख देना चाहिए।

रोपने के कुछ दिन पहले पादप सामग्री को मोनोक्रोटोफॉस नामक कीटनाशी के घोल (2 मि.ली. प्रति लीटर पानी) में 40-50 मिनट तक डुबोकर उपचारित करने से पौधों पर सूत्रकृमियों (नेमाटोड) के प्रकोप की आशंका कम हो जाती है। सामान्यतया इसके शल्ककंदों को पंक्ति से पंक्ति 20 से 40 सें.मी. और पौधा से पौधा 10 से 30 सें.मी. के अन्तराल पर बोया जाता है।

रजनीगंधा के मनमोहक पुष्प

पादप सामग्री के रोपने की गहराई उनके आमाप और उगाये जाने वाली मृदा की संरचना पर निर्भर करती है। सामान्यतया बड़े आकार के शल्ककंदों को अधिक और छोटे को अपेक्षाकृत कम गहराई पर बोया जाता है जिसे 5 से 8 सें.मी. के बीच रखा जाता है। इसी प्रकार से हल्की मृदा में शल्ककंदों को अधिक गहराई और भारी मृदा में अपेक्षाकृत कम गहराई पर लगाया जाता है। रोपने के पश्चात शल्ककंदों के आसपास की मिट्टी को अच्छी तरह से दबाकर क्यारियों को समतल बना लेना चाहिए। शल्ककंदों को बोते समय ध्यान रखना चाहिए कि उनका उगने वाला भाग ऊपर की तरह सीधा होना चाहिए। शल्ककंदों को समतल क्यारियों अथवा मेड़ों पर बोने का फसल की उपज पर कोई भी सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

सिंचाई

पौधों की समुचित वानस्पतिक वृद्धि और उत्पादन हेतु खेत में पर्याप्त नमी बनाये रखने हेतु सिंचाई की व्यवस्था करना आवश्यक है। शल्ककंदों की बुआई करते समय मृदा में समुचित नमी का होना जरूरी है। अतः क्यारियों की अंतिम बार तैयारी करने से पहले एक हल्की सिंचाई अवश्य करें। तत्पश्चात शल्ककंदों का फुटाव होने तक सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

बाद की सिंचाइयों के अन्तराल को पौधों के विकास की अवस्था, मृदा की संरचना तथा मौसम के आधार पर निर्धारित किया जाता है। सामान्यतया अधिक गर्मी के मौसम में 7-8 दिन और कम गर्मी के मौसम के दौरान 12-14 दिनों के अन्तराल पर फसल में सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए। दिल्ली अथवा लगभग समान जलवायु वाले क्षेत्रों में दिसम्बर से जनवरी के दौरान बहुत कम तापमान रहने के कारण सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

पोषक तत्वों की आवश्यकता

इस फसल के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता उगाये जाने वाले क्षेत्र की जलवायु, उगायी जाने वाली किस्म, मृदा की उर्वराशक्ति, मृदा परीक्षण की संस्तुतियां आदि कारकों पर निर्भर करती है। अच्छी सड़ी हुई कम्पोस्ट खाद को चार-पाँच टन प्रति हैक्टर की दर से खेत की तैयारी के कुछ दिन पहले ही खेत में मिला देना चाहिए। सामान्यतः इस फसल के लिए 250 से 350 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 150 से 250 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 100 से 150 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से आवश्यकता होती है।

फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा को बुआई के कुछ दिन पूर्व, जबकि नाइट्रोजन को तीन बराबर हिस्सों (बुआई के समय,

फूलों की कटाई

शल्ककंद रोपने के 3-5 महीने के पश्चात पौधों में प्रथम पुष्पण आरम्भ हो जाता है। कर्तित पुष्प व्यवसाय के लिए पौधे से कणिश को सबसे नीचे के 1-2 जोड़े पुष्पकों के खिलने की अवस्था में काटा जाता है। कणिश को धरातल से 5-8 सें.मी. छोड़कर काटना चाहिए। कणिश की लम्बाई और उनकी पात्र आयु में धनात्मक सहसम्बन्ध होता है अर्थात कणिश की लम्बाई ज्यादा होने पर उनकी पात्र आयु अधिक और लम्बाई छोटी होने पर पात्र आयु कम होती है। पौधे से काटने के तुरन्त बाद कणिशों को पानी की बाल्टी में नीचे का 15-20 सें.मी. भाग डुबोते हुए रख देना चाहिए। विच्छिन्न पुष्पों अथवा सुगंध तेल का निष्कर्षण करने के लिए परिपक्व पुष्पकों को ही तोड़ा जाता है। प्रति कणिश औसतन 2-5 पुष्पक प्रतिदिन प्राप्त हो जाते हैं। एक हैक्टर की फसल से लगभग 50 कि.ग्रा. पुष्पक प्रतिदिन प्राप्त किये जा सकते हैं। यह कार्य 4-5 व्यक्ति मिलकर 3-4 घन्टे में पूरा कर लेते हैं। यदि पुष्पकों को सुगंधित तेल का निष्कर्षण करने के लिए उपयोग करना है तो उनकी तुड़ाई सुबह की जानी चाहिए।

30 और 60 दिन पश्चात) में प्रयोग करने से उपज में बढ़ोतरी होती है। शल्ककंदों का जैव-उर्वरकों (बायो फर्टिलाइजर्स) जैसे एजोटोबैक्टर, अजोसपाइरिल्लयम अथवा दोनों के मिश्रित गाढ़े घोल में 5 मिनट तक निवेशन करने से कणिशों और शल्ककंदों की उपज में लगभग 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी होती है।

रजनीगंधा की फसल पर पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव से पौधों की वृद्धि, फूलों की संख्या और गुणवत्ता में लाभदायक प्रभाव पड़ता है। अतः पोषक तत्वों के मिश्रण का बुआई के 45 दिनों बाद 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए। पोषक तत्वों के मिश्रण के लिए 2.5 कि.ग्रा. यूरिया, 2.0 किलो ग्राम पोटेशियम नाइट्रेट और 0.1 प्रतिशत टीपोल का 10000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

शल्ककंदों की खुदाई

शल्ककंदों को शल्ककंदिकाओं सहित उचित परिपक्वता (जब पत्तियाँ सूख जायें) की अवस्था पर जमीन से खोदना उनसे अगली फसल में बेहतर वानस्पतिक वृद्धि एवं उपज प्राप्त करने के लिए आवश्यक कारक माना जाता है। सर्दी के महीनों में अथवा जब पौधों में पुष्पण बन्द हो जाता है, उनकी बढ़वार रुक जाती है और जब पत्तियाँ सूखने लगती हैं तब शल्ककंदों के पूर्णतया परिपक्व होने की अवस्था मानी जाती है।

पुंज (क्लम्प) को खोदने के 8-10 दिनों पहले सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए। पुंज को सावधानीपूर्वक खोदकर, उनकी पत्तियों को काटकर उनमें चिपकी हुई मिट्टी को साफ करके पुंज से शल्ककंदों को शल्ककंदिकाओं सहित अलग-अलग कर लिया जाता है।

भू-दृश्य निर्माण में उपयोगी

रजनीगंधा की व्यावसायिक उपयोगिता के अलावा इसे भू-दृश्य निर्माण के लिए भी विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। इसकी सुगंधित, सफेद एवं मोमी-चमकदार पुष्पकों से लदी लम्बी कणिशें अनायास ही सभी का मन अपनी तरफ आकर्षित कर लेती हैं। शबलित (वेरिगेटिड) पत्तियों वाली किस्म के पौधे तो भू-दृश्य निर्माण के लिए इसकी उपयोगिता को और भी ज्यादा बढ़ा देते हैं। इसे गमलों, क्यारियों तथा विभाजक रेखा किनारियों (बार्डर) में लगाने के लिए अच्छा माना जाता है।

सौंदर्य से समृद्ध रजनीगंधा

एक पुंज में 2-25 शल्ककंद और 4-10 शल्ककंदिकाएं प्राप्त हो जाती हैं। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए शल्ककंदों को रोपाई के कम से कम सात महीने के पश्चात् ही खोदना चाहिए। तत्पश्चात् उनको परिपक्व (1.5 सें.मी. से अधिक व्यास) और अपरिपक्व (1.5 सें.मी. से कम व्यास) दो वर्गों में विभाजित कर लेना चाहिए।

शल्ककंदों को सामान्य तापमान पर हवादार स्थान पर फैलाकर भंडारित किया जाता है। शल्ककंदों को सड़ने से बचाने के लिए उन्हें 0.2 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम अथवा मैंकोजेब कवकनाशी से उपचारित करके भण्डारण करना चाहिए। कभी भी शल्ककंदों को ढेर लगाकर नहीं रखना चाहिए। भण्डारण के दौरान उन्हें उलटते-पलटते रहते हैं।

उपज

फूलों/शल्ककंदों/निरपेक्ष की उपज उगाने वाली किस्म, बोने की दूरी, मृदा संरचना तथा क्षेत्र विशेष की जलवायु पर निर्भर करती है। अच्छा फसल प्रबंधन होने पर एक हैक्टर में 4-6 लाख कणिशें अथवा 20 से 25 टन विच्छिन्न पुष्प प्राप्त हो जाते हैं। इसके साथ एक हैक्टर में 35 से 60 क्विंटल शल्ककंद भी प्राप्त किये जा सकते हैं। प्रति हैक्टर 12-28 कि.ग्रा. निरपेक्ष उपलब्ध हो जाता है।

पादप वृद्धि नियायक

रजनीगंधा में वृद्धि और विकास की प्रक्रियायें एक से अधिक अन्तर्जात पादप (एण्डोजीनस प्लान्ट) हार्मोन्स जैसे - ऑक्सिन, जिब्रेलिन, एबसेसिक एसिड (ए, बी ए), इथेलिन, आदि द्वारा नियन्त्रित होती हैं। पादप वृद्धि नियामकों को विभिन्न विधियों जैसे- रोपने से पहले शल्ककंदों को घोल में डुबोना, खड़ी फसल पर छिड़काव, उपरोक्त दोनों विधियों द्वारा संयुक्त रूप से, मंजन (ड्रेन्च) तथा लेप (पेस्ट) द्वारा किया जाता है।

बड़े और छोटे आकार के शल्ककंदों में मौजूद सुषुप्तकाल को 4 प्रतिशत थायो यूरिया के घोल में एक घण्टा डुबोकर रखने से समाप्त किया जा सकता है। सषुप्त शल्ककंदों को जिब्रेलिक अम्ल के 100 पी.पी.एम. अथवा इथेरोल (इथेफोन) के 500 पी.पी.एम. घोल में एक घण्टा उपचारित करने के पश्चात क्रमशः 17 और 15 दिनों पहले ही फुटाव शुरू हो जाता है।

जिब्रेलिक अम्ल के 25-100 पी.पी.एम. सान्द्रताओं के घोल का खड़ी फसल पर छिड़काव करने से कणिशों की गुणवत्ता और फूलों की उपज में बढ़ोत्तरी होती है। इण्डोल ब्यूटारिक एसिड और इण्डोल एसिटिक एसिड की 1000, 1500 तथा 2000 पी.पी.एम. सान्द्रताओं का लानोलिन पेस्ट तैयार करने के बाद अण्डाशय में स्व-परागण के समय प्रफुल्लन (एनथेसिस) के ही दिन, दूसरे अथवा तीसरे दिन उपचार देने से रजनीगंधा के फूलों में बीज उत्पन्न होने पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः उचित समय पर जिब्रेलिक अम्ल, इण्डोल ब्यूटिरिक एसिड तथा अन्य रसायनों का उन्नत तरीके से प्रयोग कर फसलों की गुणवत्ता, उपज एवं बीज उत्पादन को प्रभावी ढंग से नियंत्रित एवं बढ़ाया जा सकता है।

हरी पत्तेदार सब्जियों से पोषण वृद्धि

पुष्पेन्द्र प्रताप सिंह, राजेन्द्र प्रसाद मिश्रा, राघवेन्द्र सिंह, शुभम यादव और **सुनील कुमार**

पर्याप्त खाद्यान्न उत्पादन के बावजूद भी अधिकांश जनसंख्या कुपोषण एवं सूक्ष्म तत्व जनित कुपोषण की गंभीर समस्या से जूझ रही है। विश्व की एक तिहाई आबादी आवश्यक विटामिन एवं खनिज तत्वों की समुचित आपूर्ति के अभाव में कुपोषण से ग्रसित है। हमारे देश में लगभग 30 प्रतिशत नवजात शिशु कम वजन के पैदा होते हैं, जो आगे चलकर कई प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। दक्षिण एशियाई देशों मे कुपोषण की समस्या अफ्रीकी देशों से अधिक गंभीर है। दक्षिण एशियाई देशों में कुपोषित बच्चों एवं महिलाओं की संख्या भारत मे सर्वाधिक है। सब्जियों मे सूक्ष्म पोषक तत्वों, प्रोटीन, विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट एवं औषधीय महत्व के पादप रसायनों के उपलब्ध होने के कारण मानव आहार में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। भारत की अधिकांश आबादी शाकाहारी प्रवृति की है, मौसम के अनुसार सब्जियां लगाने से वर्षभर इनकी उपलब्धता बनी रहती है। इससे पूरे वर्ष परिवार को ताजा एवं पौष्टिक सब्जियां प्राप्त होती हैं। सब्जियां पौष्टिक आहार के उन अनिवार्य तत्वों की पूर्ति करती हैं, जो बहुत सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होते हैं।

पोषण मानव की आधारभूत आवश्यकता होने के साथ ही एक स्वस्थ जीवन के लिए अति महत्वपूर्ण है। संतुलित आहार हमारे शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायक होने के साथ ही हमें स्फूर्ति प्रदान कर अनेक रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। संतुलित आहार में सब्जियां महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन 400 ग्राम सब्जियों का सेवन अनिवार्य करना चाहिए जबकि देश में यह मात्रा 290 ग्राम से भी कम है। दैनिक स्तर पर सेवन में 100-125 ग्राम पत्तेदार सब्जियां, 75 ग्राम कन्द तथा 200 ग्राम अन्य सब्जियां होनी चाहिए।

सब्जियों का पोषण महत्व

देश के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार की पत्ते वाली सब्जियां उगाई जाती हैं। इनमें पालक, धनिया, मेथी, चौलाई, पोई, कुल्फा पार्सले, सिलेरी आदि सर्वाधिक प्रचलित हैं। इनके अलावा बहुत सी वनस्पतियाँ जैसे बथुआ, पर्सलेन आदि औषधीय गुणों से भरपूर हैं। पर्सलेन में अल्फा-लिनोलिक एसिड एक आवश्यक ओमेगा-3 फैटी एसिड मौजूद होता है।

दलहनी फसलें जैसें चना, मटर, लोबिया, सरसों तथा कुसुम की मुलायम पत्तियों को भी साग के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। एकवर्षीय शाकीय पौधों के अतिरिक्त कुछ बहुवर्षीय पौधों की मुलायम पत्तियों को भी साग के रूप मे प्रयोग किया जाता है। हरी पत्तियों वाली सब्जियों मे आयरन, कैल्शियम, बीटा-कैरोटीन (विटामिन ए), विटामिन सी, विटामिन बी समूह, विटामिन के, विटामिन डी, खाद्य रेशा, प्रोटीन एवं फोलिक अम्ल प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जिसे सारणी-1 में दर्शाया गया है।

पोई साग:- आमतौर पर इसे भारतीय पालक/मालाबार पालक के नाम से जाना जाता है। इसकी खेती पूरे देश में की जाती है। मुख्यत: दो प्रकार के बेसेला की खेती की जाती है:- हरा (बेसेला अल्बा प्रजाति अल्बा) और लाल प्रकार (बेसला अल्बा प्रजाति रूबरा)

पोई साग आमतौर पर इसकी पत्तियों और युवा टहनियों के लिए उगाया जाता है। पकाने के बाद यह एक उत्कृष्ट सब्जी बन जाती है। मुलायम रसीली पत्तियों को सलाद के रूप में कच्चा खाया जा सकता है। पोई साग विटामिन और खनिजों का एक अच्छा स्त्रोत है। इसकी 100 ग्राम ताजा पत्तियों में कैल्शियम (109 मि.ग्रा.), आयरन (10 मि.ग्रा.), विटामिन ए (8000 आईयू), विटामिन सी (102 मि.ग्रा.) और फोलिक एसिड (140 माइक्रोग्राम) होता है। आईसीएआर-आईआईवीआर, वाराणसी,

भाकृअनुप-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान मोदीपुरम, मेरठ-250110

सारणी-: प्रति 100 ग्राम हरी पत्तेदार सब्जियों मे पाये जाने वाले पोषक तत्व

हरी पत्तेदार सब्जियां	पानी (ग्राम)	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	ऊर्जा (कैलोरी)	विटामिन ए (आई यू)	विटामिन सी (मि.ग्रा.)	आयरन (मि.ग्रा.)	कैल्शियम (मिग्रा.)
पत्तागोभी	92	4.6	1.8	0.1	27	1200	124	1	39
पालक	92	2.9	2.0	0.7	26	5580	28	11	73
धनिया पत्ती	86	6.3	3.3	0.6	44	6920	135	18	184
चौलाई	86	6.1	4.0	0.5	45	5520	99	25	397
मेथी पत्ती	86	6.0	4.4	0.9	49	2340	52	16	395
मूली पत्ती	91	2.4	3.8	0.4	28	5300	81	4	265

द्वारा हाल ही में पोई साग की तीन किस्मों काशी पोई-1, काशी पोई-2 और काशी पोई-3 को अधिसूचित किया गया है।

पालकः- पत्ती वाली सब्जियों में पालक का प्रमुख स्थान है। इसकी पत्तियों में कैरोटीन, आयरन एवं खनिज तत्वों के साथ-साथ अच्छी मात्रा में विटामिन 'सी' (40.9 मि.ग्रा./100 ग्राम) की उपलब्धता इसे और महत्वपूर्ण बनाती है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन अमीनो अम्ल एवं विशेषकर लाइसिन की अधिक मात्रा आहार के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसके अनेक औषधीय महत्व हैं जैसे- यह प्लीहा एवं यकृत रोगों में लाभप्रद है। इसकी पत्तियों की तासीर ठंडी होती है। इसके सेवन से एनीमिया एवं सूक्ष्म तत्वों द्वारा जनित कुपोषण की समस्या से निदान पाया जा सकता है। पत्ती वाली सब्जियों का आहार को संतुलित एवं पोषण सुरक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण स्थान है। ये सब्जियां कम अवधि में तैयार होने और अधिक उत्पादन देने के कारण अपेक्षाकृत सस्ते मूल्य पर उपलब्ध रहती हैं।

रक्त अल्पताः- आहार में आयरन की कमी होने से रक्त में हीमोग्लोबिन का निर्माण रुक जाता है, जिससे रक्त अल्पता की समस्या उत्पन्न हो जाती है। आयरन की कमी से बच्चे एवं महिलाएं, विशेषकर गर्भवती महिलाएं, प्रभावित होती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा करवाए गए सर्वेक्षण के अनुसार दक्षिण एशियाई देशों में रक्त अल्पता की समस्या सबसे अधिक है। यहां लगभग 80 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं रक्त अल्पता से ग्रसित हैं। यमन में सर्वाधिक लगभग 63 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं रक्त अल्पता की शिकार हैं। इसके बाद कम्बोडिया 55.8 प्रतिशत एवं म्यंमार में 53.8 प्रतिशत रक्त अल्पता में ग्रसित हैं।

बथुआः- यह एक तेज बढ़ने वाली, वार्षिक अल्पदोहित पत्तेदार सब्जी है और व्यापक जलवायु , मिट्टी के प्रकार एवं उर्वरा स्तर के प्रति सहनशील है। सीमांत भूमि में इसकी खेती की जा सकती है। इसकी पत्तियां एवं कोमल पौधे के हिस्सों का उपयोग पत्तेदार सब्जी और हर्बल दवा के रूप में किया जाता है। रसीली मुलायम पत्तियां फाइबर, प्रोटीन, खनिज, विटामिन, एंटी ऑक्सीडेंट और ओमेगा-6-फैटी एसिड की बहुत अच्छी स्त्रोत हैं। संभवतः उच्च उपज देने वाली जारी/अधिसूचित किस्मों की अनुपलब्धता के कारण इसकी व्यावसायिक खेती अभी तक बहुत लोकप्रिय नहीं रही है। इसकी कमी को दूर करने के लिए निम्न किस्मों को आईसीएआर-आईआईवीआर, पूसा

मेथी

आयरन का प्रमुख स्रोत

हरी पत्ते वाली सब्जियां आयरन की प्रमुख स्रोत होती हैं। आयरन की उपलब्धता के लिए यह आवश्यक है कि जिस अनुपात में आयरन आहार में लिया जाता है, उसी अनुपात में इसका शरीर में अवशोषण हो। यह अवशोषण शरीर में संचित आयरन के सापेक्ष लिए गए आहार की सुपाच्यता और लिए गए आयरन की मात्रा पर निर्भर करता है। फाइटिक अम्ल, ऑग्जेलिक अम्ल और रेशा इसकी उपलब्धता को कम करते हैं, जबकि एस्कार्बिक अम्ल इसकी उपलब्धता को बढ़ाता है। कुछ प्रमुख पत्ते वाली सब्जियां जैसे- पार्सले 17.9 मि.ग्रा., लाही पत्ता 16.3 मि.ग्रा., कुल्फा 14.8 मि.ग्रा., पोई 10.0 मि.ग्रा., बथुआ 4.2 मि.ग्रा., कलमी साग 3.9 मि.ग्रा., चौलाई 3.4 मि.ग्रा., मेथी 1.93 मि.ग्रा., पालक 1.14 मि.ग्रा., सहजन 0.85 मि.ग्रा. एवं खट्टी पालक 0.75 मि.ग्रा. में आयरन की मात्रा प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में पाई जाती है।

करेम साग

इसे कलमी साग के नाम से भी जाना जाता है। यह एक जलीय पौधा है। ये उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, कर्नाटक आदि राज्यों में धान के खेत, तालाब एवं झील में काफी संख्या में उगे हुए पाए जाते हैं। अधिक वर्षा के कारण जब पत्ती वाली सब्जियां खराब हो जाती हैं, तो उस समय इसकी उपलब्धता बनी रहती है। इसे गांव में गरीब की भाजी के रूप में जाना जाता है। इसकी पत्तियां खनिज एवं विटामिन का अच्छा स्त्रोत हैं। इसमें विद्यमान कैरोटीन में मुख्य रूप से बीटा कैरोटीन, जैंथ्रोफिल तथा टेराजैंथिन जैसे तत्व हैं। इसके अनेक औषधीय गुण हैं। इसकी पत्तियों एवं तने का प्रभाव शीतकारी होता है। पौधों का रस आर्सेनिक एवं अफीम से उत्पन्न विषाक्तता को दूर करता है। असोम में इसे तंत्रिकावर्द्धक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

नई दिल्ली द्वारा विकसित एवं अधिसूचित किया गया है। इनमें काशी बथुआ-2 (हरी पत्तियां), काशी बथुआ-4 (बैंगनी हरा), पूसा बथुआ-1 और पूसा हरा प्रमुख हैं।

सरसों साग:- सरसों के साग को 'चाइनीज सरसों' के नाम से भी जाना जाता है। इसकी पत्तियों पर मोमी कोटिंग के साथ या उसके बिना चपटी, चौड़ी, सफेद और मोटी मध्य शिराएँ होती हैं। इसे बरसात के मौसम के बाद उगाया जाता है। पत्तियों की कटाई नवंबर से शुरू होती है और जनवरी फरवरी के अंत तक जारी रहती है। यह सब्जी आयरन, सल्फर, पोटेशियम, फॉस्फोरस और कई अन्य खनिजों से भरपूर होती है। पत्तियों में 71.7-110.9 मि.ग्रा./100 ग्रा. एस्कॉर्बिक एसिड और प्रचुर मात्रा में कैरोटीनॉइड और एंथोसायनिन होते हैं। पूसा साग-1 किस्म को आईएआरआई क्षेत्रीय स्टेशन, कटराईन द्वारा विकसित किया गया हैं।

मेथी:- मुलायम पत्ती वाली सब्जियों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। मेथी की मुलायम पत्तियों को सब्जी के रूप में तथा बीज को मसाले के रूप में उपयोग किया जाता है। इसमें प्रोटीन एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ-साथ विटामिन 'के' तथा अल्फा एवं टोकोफेराल भी पाया जाता है। इसका सेवन अपच को दूर कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है तथा यकृत को सक्रिय रखता है। यह पाचन सम्बन्धी विकारों तथा फोड़े आदि को दूर करने में लाभप्रद होता है। संथाल के आदिवासियों द्वारा इसे नाक पर हुए घाव के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है।

चना साग

असमिया पलंग:- यह असोम की बहु प्रचलित पत्ते वाली सब्जी फसल है। इसके पौधे नम स्थानों पर बहुतायत में उगते हैं। इसकी पत्तियों में कैरोटीन की उपलब्धता अच्छी होती है। इसके प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में 3 मि.ग्रा. कैरोटीन पाई जाती है। असमिया पलंग मधुमेह में लाभकारी है। पत्तियों का लेप भीतरी चोट, घाव एवं सूजन पर गुणकारी होता है।

रोगों से बचाव

हरी सब्जियां मानव शरीर को रक्त वाहिकाओं मे होने वाले गंभीर रोगों से बचाती हैं। रक्त वाहिका मे होने वाला रोग ऐसी स्थिति है जो हमारी नसों को प्रभावित करता है। इसमें शरीर में प्रवाहित होने वाला रक्त प्रवाह कम हो जाता है। यह रोग रक्त वाहिकाओं की भीतरी दीवारों पर फैटी कैल्शियम जमा होने के कारण हो सकता है ब्रिटिश जनरल ऑफ न्यूट्रीशन में प्रकाशित एक शोध के अनुसार जो महिलाएं ब्रोकोली, ब्रसेल्स, स्प्राउट्स और गोभी सहित हरी सब्जियों का अधिक सेवन करती हैं, उनमें रक्त वाहिकाओं की क्षति कम होती है। शोध में 684 वृद्ध महिलाओं के आंकड़ों का अध्ययन किया गया। इसमें पाया गया कि जिन महिलाओं द्वारा हरी सब्जियों का सेवन अधिक किया गया, उनकी रक्त वाहिकाओं में फैटी कैल्शियम जमा नहीं हुआ तथा रक्त प्रवाह भी सामान्य था। गौरतलब है कि नसों में जमा कैल्शियम ही हृदय रोगों के कारण बनते हैं। अत: उद्यान ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार के पोषण की पूर्ति के लिए अति आवश्यक है। इसके माध्यम से विभिन्न प्रकार की सब्जियों की आपूर्ति कर प्रतिदिन के आहार में खनिज, विटामिन तथा औषधीय महत्व के पादप रसायनों की पूर्ति की जा सकती है। पोषण उद्यान में कम क्षेत्रफल तथा कम समय में अलग-अलग प्रकार की सब्जियों को वर्ष भर उगाया जा सकता है। इससे पूरे वर्ष परिवार की पोषण सबंधी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है।

सहजन:- यह एक बहुत ही उपयोगी पौधा है। इसमें विटामिन 'ए' तथा एस्कार्बिक अम्ल प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सहजन के पौधे का औषधीय महत्व है। इसकी पत्तियों का सेवन कैंसर रोग में लाभकारी है। इसे त्वचा, पाचन एवं श्वसन संबंधी रोगों को दूर करने में प्रयोग किया जाता है।

अगाथी:- यह एक मध्यम ऊंचाई का शीघ्र बढ़ने वाला पौधा है। दक्षिण भारत में काली मिर्च एवं पान के पौधों को धूप से बचाने के लिए छायादार वृक्ष के रूप में इसे लगाया जाता है। इसकी मुलायम पत्तियों एवं फलों को सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी पत्तियां विटामिन 'सी', कैल्शियम और प्रोटीन का अच्छा स्रोत हैं। मुंह में छाले होने पर इसकी पत्तियां लाभकारी होती हैं। कटे स्थान पर पत्तियों की पुल्टिस बांधने से लाभ होता है।

चने का साग:- चने का साग कब्ज, डायबिटीज, पीलिया आदि रोगों में बहुत लाभदायक होता है। इसमें फाइबर अधिक होता है। इससे शरीर का मेटाबॉलिज्म ठीक रहता है और वजन को नियंत्रित रखना आसान होता है। चने के साग में कैल्शियम और पोटेशियम अच्छी मात्रा में होते हैं। ये हड्डियों को मजबूत करने में सहायता करते हैं। इसमें आयरन भी काफी मात्रा में होता है इसलिए जिन्हें एनीमिया के लक्षण हो उन्हें इसका सेवन जरूर करना चाहिए।

कुल्फा:- यह औषधीय महत्व की पत्तेदार सब्जी है। इसकी पत्तियों में प्रोटीन, आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस एवं अन्य खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। कुल्फा की पत्तियों में 381 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में विटामिन 'के-1' पाया जाता है। यह पकाते समय नष्ट नहीं होता। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा इसे औषधीय पौधे के रूप में चिन्हित किया गया है। इसका सेवन पेचिश तथा बुखार में लाभप्रद होता है। यह मूत्र रोगों, हड्डी के जोड़ों और अन्य स्त्री रोगों में लाभकारी है। कुल्फा हृदय रोगों के लिए लाभदायक है। पत्तियों का लेप चर्म रोगों जैसे एक्जिमा आदि में लाभप्रद है। इसमें पाया जाने वाला एल. नोराड्रेनिलिन स्नायुवर्द्धक का कार्य करता है।

रोगों एवं कीटों का जैविक प्रबंधन

गिडार अवस्था के नियन्त्रण के लिए जैव कीटनाशी जीवाणु बैसिलस सिरिस स्ट्रेन डब्ल्यू.जी.पी.एस.वी. पाउडर 200 ग्राम/0.02 हैक्टर (10 किग्रा./हैक्टर) की दर से करें सब्जियों मे जड़ गलन एवं सड़न सम्बन्धी रोगों की रोकथाम के लिए ट्राइकोडर्मा फंफूदनाशी से बीज एवं पौध उपचार 5-10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से करें एवं 100 ग्राम जैव फंफूदनाशी को 10 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद मे मिलाकर जुताई के समय प्रयोग करें। रस चूसने वाले कीटों जैसे एफिड, जैसिड थ्रिप्स तथा सफेद मक्खी के प्रबंधन के लिए नीम के तेल से 1 मि.ली. प्रति लीटर की दर से 8-10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। सफेद मक्खी के लिए 1-2 चिपचिपे पीले ट्रैप (तेल के कनस्तर में बाहर से पीला पेन्ट कर ग्रीस लगायें) प्रति 0.02 हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

सफलता गाथा

स्ट्रॉबेरी का गर्म क्षेत्रों में भरपूर उत्पादन

नरेन्द्र मोहन सिंह, अलका सिंह, उत्कर्ष तिवारी और **एम.बाला सुब्रमनियन**

इंदौर, ग्राम जोतपुर, मध्य प्रदेश के रहने वाले प्रगतिशील किसान श्री शिवचंद पाटीदार ने गर्म क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी फसल उत्पादन की संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। इन्होंने गर्म इलाके में ठंडे प्रदेश की फसल स्ट्रॉबेरी का सफलतापूर्वक उत्पादन कर कमाल किया है एवं अन्य किसानों के प्रेरणा स्रोत्र बन कर उभरे हैं। इसके माध्यम से इन किसानों के लिए इन्होंने अच्छी आमदनी प्राप्त करने का एक और नया लक्ष्य प्रदान किया है। श्री पाटीदार का मानना है कि खेती में अच्छा मुनाफा प्राप्त करने हेतु थोड़ा अलग सोचने एवं समझदारी से काम लेने की जरूरत होती है। इसके साथ ही वैज्ञानिकों के लगातार संपर्क में रहते हुए उनकी सलाह अनुसार तकनीकी ज्ञान के प्रयोग द्वारा निश्चित रूप से सफलता प्राप्त होती है। विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुए परंपरागत खेती में कुछ अहम बदलाव करने की आवश्यकता होती है। खेती का पेटर्न बदलने में पाटीदार जी का शुरुआती खर्च जरूर आया पर धीरे-धीरे मुनाफा बढ़ता गया। वर्तमान में श्री पाटीदार एक सफल बागवान बन अन्यों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन रहे हैं।

देश में भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के कृषि वैज्ञानिकों के अथक प्रयासों एवं कड़ी मेहनत द्वारा विकसित की गयी आधुनिक तकनीकों एवं नई विकसित फलों की प्रजातियों के दम पर बागवानी कृषि पर समुचित ध्यान केन्द्रित करने से देश में फलों का उत्पादन और निर्यात बढ़ा है। इसके फलस्वरूप अब ठंडे इलाके की बागवानी फसलों को गर्म इलाकों में उगाना संभव हो गया है। देश के मध्य एवं उत्तर-पूर्वी राज्यों में बागवानी फसलें ग्रामीण किसानों की कमाई का मुख्य स्रोत्र बन चुकी हैं। इस कारण से भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बागवानी फसलों का विशेष महत्व है। इसका श्रेय हमारे कृषि वैज्ञानिकों के साथ-साथ हमारे जागरूक किसानों को भी जाता है जो कृषि वैज्ञानिकों के लगातार संपर्क में रहते हुए आधुनिक तकनीकी ज्ञान का प्रयोग अपनी कृषि या बागवानी में करते रहते हैं। इसके साथ ही सरकार द्वारा दी जा रही योजनाओं का भी पूरा लाभ ग्रामीण एवं आर्थिक सशक्तिकरण के लिए उठाते हुए निरंतर सफलता की ओर बढ़ रहे हैं। ऐसे ही एक यशस्वी सफल किसान हैं श्री शिवचंद पाटीदार।

गर्म इलाके में ठंडे प्रदेश की फसल स्ट्रॉबेरी का उत्पादन लेने की चुनौती में सफल होने वाले किसान पाटीदार जी को इस पहल एवं किसानों की आय में वृद्धि के एक नये लक्ष्य को प्रदान करने के लिए सराहा जाता है।

पौधे लगाने का तरीका

प्रगतिशील कृषक श्री शिवचंद पाटीदार ने स्ट्रॉबेरी फसल के पौधे लगाने के लिए अक्टूबर में जमीन की जुताई कर क्यारी बनाई और उर्वरक में एक बीघा में 50 कि.ग्रा. डीएपी, कैल्शियम, मैग्नीशियम ह्यूमिक के अलावा 15-20 कि.ग्रा./बीघा की दर से सूक्ष्म पोषक तत्व डालकर मल्चिंग बिछाई,ताकि नमी बनी रहे और खरपतवार न उगें। मल्चिंग से मिट्टी में ठंडक के अलावा पौधे को पोषक तत्व सही मात्रा में मिलता है और कीटों से भी सुरक्षा मिलती है। स्ट्रॉबेरी के पौधे एक

कृषि अर्थशास्त्र संभाग, भाकृअनुप-भातीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

लागत एवं शुद्ध आय विवरण

प्रथम वर्ष लागत प्रति एकड़ जिसमें खरीदे गए पौधे+मल्चिंग+मजदूर+खाद+दवाई+पैकिंग इत्यादि = 445000 रुपये

कुल आय प्रति एकड़ = 860000 रुपये

शुद्ध आय प्रति एकड़ = 415000 रुपये

दूसरे वर्ष लागत प्रति एकड़ 20 से 25 % कम रहने की उम्मीद है जिसमें पौधे कृषक द्वारा स्वयं तैयार किये गये हैं।

प्रति पौधा उत्पादन 1 से 1.5 कि.ग्रा. रहता है।

पौधे की संख्या प्रति एकड़ 15000 -16000 रहती है।

प्रति एकड़ उत्पादन लगभग 22500-24000 कि.ग्रा. रहता है।

गर्म क्षेत्र में स्ट्रॉबेरी फसल उत्पादन प्रदर्शन

क्यारी में दो कतार में लगाते हैं, जिसमें कतार से कतार की दूरी 12 इंच और पौधे से पौधे की दूरी 12-16 इंच रखी जाती है।

स्ट्रॉबेरी विदेशी फसल होने से इसका पौधा संवेदनशील रहता है, इसलिए इसमें फंगीसाइड का प्रयोग करना पड़ता है। इस फसल में इल्ली और थ्रिप्स कीट की आशंका रहती है। इनके अलावा कवक का भी ध्यान रखना पड़ता है। पौधे के विकास के लिए सीमित मात्रा में उर्वरक ड्रिप से दिया जाता है। इसके अतिरिक्त पौधों की मांग अनुसार सिंचाई नियमित रूप से करनी आवश्यक है।

पौधे लगाने का अनुकूल समय

गर्म क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की फसल के लिए अक्टूबर से मार्च तक का समय अनुकूल रहता है। पौधे लगाने के 30 दिनों के बाद फूल आना और 40 दिनों के बाद फल परिपक्व होना शुरू हो जाते हैं। इन्हें पहली फसल लगाने पर स्ट्रॉबेरी से प्रति पौधा एक से डेढ़ कि.ग्रा. का उत्पादन मिला। पाटीदार जी ने बताया स्ट्रॉबेरी की एक ट्रे में 8 बॉक्स होते हैं, जिसका गत वर्ष भाव कम होने से अधिकतम 150 और न्यूनतम 120 रुपये कीमत मिली।

एक बीघे से खर्च सहित करीब 2.5 लाख रुपये मिले। श्री पाटीदार आदानों की लागत को कम करने के लिए इस वर्ष स्ट्रॉबेरी के पौधों की नर्सरी खुद ही तैयार करेंगे। इसके लिए उन्होंने इजिप्ट और कैलिफोर्निया से ऑनलाइन ट्रेनिंग ली है और तकनीकी ज्ञान का सहयोग कृषि विज्ञान केंद्र, मनावर, भाकृअनुप - कृषि विभाग से प्राप्त किया है।

गर्म इलाके में ठंडे प्रदेश की फसल

निमाड़ से सटे धार जिले के मनावर से 15 कि.मी. दूर स्थित ग्राम जोतपुर को गर्म इलाका माना जाता है। यहाँ के निवासी कला स्नातक युवा प्रगतिशील कृषक श्री शिवचंद पाटीदार के पास कुल 28 बीघा जमीन है, जिस पर वह परंपरागत खेती के तहत मक्का, कपास, सब्जियां और डॉलर चना उगाते थे, लेकिन प्रतिभाशाली इस किसान के मन में कुछ अलग करने की इच्छा बनी रहती थी। इसी महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए नूतन प्रयोगधर्मी किसान श्री पाटीदार ने सोशल मीडिया एवं इंटरनेट का सहारा लिया। वहीं तकनीकी सहयोग, कृषि विज्ञान केंद्र, मनावर, भाकृअनुप - कृषि विभाग से लिया एवं स्ट्रॉबेरी फसल की खेती से संबंधित सभी जानकारी हासिल की और निमाड़ जैसे गर्म इलाके में ठंडे प्रदेश की फसल स्ट्रॉबेरी का उत्पादन लेने का प्रयास किया। अक्टूबर वर्ष 2023 में हिमाचल प्रदेश से स्ट्रॉबेरी की किस्म विंटर डान के पौधे परिवहन खर्च सहित 11 रुपये प्रति नग की दर से मंगवाये और 30 हजार पौधे मल्चिंग डालकर लगाए। स्ट्रॉबेरी की फसल में एक बीघा जमीन में करीब 7800 पौधे लगते हैं। किसान श्री शिवचंद पाटीदार के अनुसार स्ट्रॉबेरी की खेती में साथ में किसान प्याज एवं लहसन की फसल भी इंटरक्रॉप के रूप में सफलतापूर्वक उगा सकते हैं।

श्री शिवचंद पाटीदार द्वारा उत्पादित स्ट्रॉबेरी फसल का प्रदर्शन

सारणी: स्ट्रॉबेरी फसल का उत्पादन लागत एवं शुद्ध आय विवरण प्रति एकड़

तकनीकी विवरण (स्ट्रॉबेरी प्रजाति विंटर डान)	लागत/प्रति एकड़	कुल आय/प्रति एकड़	शुद्ध आय/प्रति एकड़
प्रथम वर्ष	4,45,000 रुपये	8,60,000 रुपये	4,15,000 रुपये
द्वितीय वर्ष (अनुमानित)	3,56,000 रुपये	8,80,000 रुपये	5,24,000 रुपये

स्ट्रॉबेरी का स्वस्थ पौधा

'प्रगतिशील कृषि अवार्ड' सम्मान

श्री शिवचंद पाटीदार को निमाड़ जैसे गर्म इलाके में ठंडे क्षेत्र की फसल स्ट्रॉबेरी का उत्पादन लेने के नवाचार के लिए राजमाता विजयाराजे सिंधिया, कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर में पूर्व कृषि मंत्री, भरत कुशवाह जी द्वारा 'प्रगतिशील कृषि अवार्ड' से सम्मानित किया गया। इनकी इस उपलब्धि ने क्षेत्र के अन्य किसानों को भी प्रोत्साहित किया है। इससे निमाड़ क्षेत्र में स्ट्रॉबेरी के उत्पादन को नया आयाम मिला है। पाटीदार जी की तरह ही अन्य किसान गर्म क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी फसल उत्पादन संबंधी किसी भी तरह की जानकारी और तकनीकी सहयोग के लिए कृषि विज्ञान केंद्र, मनावर, मध्य प्रदेश एवं बागवानी प्रौद्योगिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012, कृषि विभाग, पूसा से संपर्क कर सकते हैं।

चौलाई की व्यावसायिक खेती

मनीष कुमार[1], **मनप्रीत कौर**[2], **कृष्णा**[3] और **संजय सिंह**[3]

चौलाई दुर्लभ बहुउपयोगी फसलों में से एक है जो मानव उपभोग के लिए पौष्टिक अनाज और स्वादिष्ट हरी सब्जी दोनों के रूप में उपयोग की जाती है। इसके अतिरिक्त, चौलाई को इसके शानदार फूलों के रंगों के कारण एक सौंदर्यपूर्ण पौधे के रूप में भी उगाया जा सकता है। भारत में यह सबसे लोकप्रिय पत्तेदार सब्जी है। इसकी खेती गर्मियों और आर्द्रता वाले मौसम में की जाती है। इसका छोटा जीवनकाल और प्रति इकाई क्षेत्र में खाद्य पदार्थों का उच्च उत्पादन इसे फसल चक्र के लिए एक अच्छा विकल्प बनाता है। चौलाई के तने और पत्तियाँ मुलायम होती हैं जो आयरन, कैल्शियम, मैग्नीशियम और विटामिन ए तथा सी का अच्छा स्रोत हैं। चौलाई में बीटा-कैरोटीन और एस्कॉर्बिक एसिड जैसे एंटीऑक्सीडेंट यौगिकों की एक महत्वपूर्ण मात्रा शामिल होती है, जो पेट, बृहदान्त्र और मलाशय के घातक रोगों को रोकने में मदद करते हैं। यह फसल कुपोषण और अल्पपोषण के प्रभाव को कम करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

चौलाई का पौधा उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से पनपता है। चौलाई एक गर्म मौसम की फसल है जो गर्म और आर्द्र परिस्थितियों के लिए अनुकूल है। उष्णकटिबंधीय जलवायु में, इसे सालभर उगाया जाता है जबकि समशीतोष्ण जलवायु में, इसे पतझड़, वसंत और गर्मियों में उगाया जाता है।

लाल चौलाई के पौधों में रंग विकास के लिए तेज धूप आवश्यक है। यद्यपि चौलाई को विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है, लेकिन इसकी फसल अच्छी तरह से सूखी, दोमट मिट्टी में सबसे अच्छी होती है जो कार्बनिक पदार्थों से भरपूर होती है। चौलाई की फसल 5.5 और 7.5 के बीच

[1]सहायक प्राध्यापक, [3]शोध छात्र, शाकीय विज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप उद्यान विश्वविद्यालय, करनाल (हरियाणा); [2]विषय वस्तु विशेषज्ञ (सब्जी विज्ञान एवं पुष्पकृषि), कृषि विज्ञान केंद्र, बरठीं, बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश)

चौलाई की स्वस्थ फसल

की पीएच मान वाली मिट्टी में आसानी से उगाई जा सकती है।

खेत की तैयारी

चौलाई के बीज बहुत छोटे होते हैं इसलिए मिट्टी को बिना किसी गांठ या पपड़ी के बहुत अच्छी तरह से तैयार किया जाना चाहिए। तीन से चार बार हैरो चलाने के बाद, खेत को अच्छी तरह से समतल करें। फिर, बार-बार हल चलाकर (कम से कम 4-5 बार हल चलाकर) खेत को अच्छी तरह से तैयार करें। सभी खरपतवार और ठूंठ को हटा दें। आखिरी जुताई के समय, 25 टन/हैक्टर की दर से अच्छी तरह से सड़ी हुई जैविक खाद को खेत में डालना चाहिए।

बीज दर और बीज उपचार

बिजाई का समय, मिट्टी का प्रकार, बीज का आकार और मिट्टी की नमी की उपलब्धता सहित कई कारक बीज दर को प्रभावित करते हैं। बीजों को छिटककर या 20 से 30 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में ड्रिलिंग करके बोया जाता है। सीधे उगाने में, समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए, बीजों को बारीक मिट्टी या रेत के साथ मिलाया जाता है। छोटे बीजों को उथली तरह से केवल 1 से 1.5 सें.मी. की गहराई पर बोया जाना चाहिए। सीधी बिजाई के लिए बीज दर लगभग 2 से 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर और रोपाई वाली फसलों के लिए 1 कि.ग्रा./हैक्टर होती है।

बिजाई

चौलाई एक गर्म मौसम की फसल है। इसे उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वर्षभर उगाया जा सकता है। उत्तर

चौलाई की उन्नत किस्म - पूसा किरण

भारतीय परिस्थितियों में, आमतौर पर फसल की दो बार बिजाई की जाती है: फरवरी-मार्च और जून-जुलाई। बिजाई के दौरान पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. और पंक्ति के भीतर पौधों की दूरी लगभग 20-25 सें.मी. रखी जाती है।

खाद और उर्वरक प्रबंधन

चौलाई एक उच्च उपज देने वाली और अच्छी मात्रा में पोषक तत्व उपयोग करने वाली फसल है। खाद संबंधी अनुशंसा में अंतिम जुताई के समय 20-25 टन गोबर की खाद डालना शामिल है और यह एक ऐसी फसल है जिसका विकास अवधि का समय कम होता है लेकिन यह एक अच्छा सूक्ष्म पोषक तत्वों का संभरक होता है। इसके अतिरिक्त 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है।

बिजाई के समय फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा जबकि नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा खेत में डालें। बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा को दो बराबर भागों में बिजाई के 3 सप्ताह के बाद और पहली कटाई

उन्नत तकनीक से भूमि की तैयारी

उन्नत किस्में

पूसा किरण: यह हरी पत्तियां देने वाली एक उन्नत किस्म है। यह खरीफ मौसम के लिए सबसे उपयुक्त होती है।

पूसा लाल चौलाई: यह उच्च उपज देने वाली किस्म है। पत्तियों की ऊपरी सतह गहरे लाल रंग की तथा निचली सतह बैंगनी लाल रंग की होती है। यह 4 कटाई में 45-49 टन/हैक्टर उपज देती है। यह बरसात के मौसम में सबसे उपयुक्त किस्म है।

अर्का सुगुना: यह एक बहुकटाई वाली किस्म है जिसमें बिना रेशेदार हुए चौड़े हरे पत्ते होते हैं जो तेजी से पुनर्जीवित भी होते हैं। यह आकर्षक चौड़े और हरे पत्तों के साथ बेहद रसीले तने प्रदान करती है।

अर्का अरुणिमा: यह एक बहुकटाई वाली किस्म है जिसके पत्ते चौड़े गहरे बैंगनी रंग के होते हैं। पहली कटिंग बिजाई के 30 दिन बाद तैयार हो जाती है और उसके बाद 10-12 दिनों के अंतराल पर दो और कटिंग तैयार हो जाती हैं।

करने के बाद फसल में लगाकर मिट्टी चढ़ा दी जाती है।

सिंचाई प्रबंधन

मिट्टी को नम रखने के लिए फसल को हल्की और लगातार सिंचाई की आवश्यकता होती है। सिंचाई की आवृत्ति स्थानीय जलवायु और मिट्टी की विशेषताओं से प्रभावित होती है। बिजाई के समय मिट्टी में नमी की कमी होने पर पहली सिंचाई बिजाई के तुरंत बाद करें तथा अगली सिंचाई सप्ताह में एक बार पानी के हल्के प्रवाह के साथ करें। गर्मियों के दौरान, अगली सिंचाई 3-5 दिनों के अंतराल पर करें, जबकि बरसात के मौसम में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

चौलाई की स्वस्थ फसल

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नमी, पोषक तत्वों, प्रकाश और स्थान के लिए फसल के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं और यदि समय पर उपचार न किया जाए तो फसल को काफी नुकसान हो सकता है। चौलाई में खरपतवार की फसल के साथ प्रतिस्पर्धा बिजाई के 20 से 50 दिनों बाद तक महत्वपूर्ण पाई गई है। इसलिए, प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिए बिजाई के 25 और 50 दिनों बाद दो बार निराई की सिफारिश की जाती है। खरपतवारों को खेत से हटाने के लिए उथली अंतर-खेती का उपयोग करें।

कटाई और उपज

आमतौर पर, पौधों को पूरा निकाल लिया जाता है, साफ किया जाता है, और बंडलों में कोमल साग के रूप में बाजार में भेजा जाता है। इसके अतिरिक्त चौलाई की सबसे अच्छी कटाई बिजाई के 25 से 35 दिनों के बीच की जा सकती है। उचित किस्म का चयन, कटिंग की संख्या और पारंपरिक तकनीकों के आधार पर, चौलाई की एक अच्छी फसल प्रति हैक्टर 10 से 15 टन के बीच पैदावार दे सकती है।

रोग और कीट प्रबंधन

प्रमुख रोग

पत्ती का धब्बा और सफेद जंग, दो ऐसे रोग हैं जो चौलाई के पौधों को काफी हद तक प्रभावित करते हैं।

पत्ती धब्बा रोग: पत्तियों पर बहुत सारे छोटे, भूरे, गोल धब्बे, जो बहुतायत में मौजूद होते हैं, इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। धब्बे छोटे, गोल होते हैं और उनमें संकेंद्रित छल्ले होते हैं; लेकिन समय के साथ वे बड़े हो जाते हैं और कभी-कभी आपस में मिल जाते हैं। इस रोग के नियंत्रण के लिए ब्लाइटॉक्स (0.3%) या डिफेनोकोनाजोल (0.05%) या क्लोरोथेलोनिल (0.2%) का 15 दिन के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करें।

सफेद जंग रोग: इस रोग के कारण पत्ती के निचले हिस्से पर सफेद, छाले जैसे दाने हो जाते हैं जो अनियमित या गोलाकार होते हैं और ऊपरी सतह पर प्रत्येक दाने के बगल में पीले धब्बे दिखाई देते हैं। इस रोग को नियंत्रित करने के लिए फसल पर मैंकोजेब (0.2-0.3%) या मेटालेक्सिल-मैंकोजेब (0.25%) का छिड़काव करने की सिफारिश की जाती है।

प्रमुख कीट

पत्ती खाने वाला कैटरपिलर: इस कीट से चौलाई की फसल को बहुत नुकसान पहुंचता है। लार्वा पत्तियों को आपस में बांधते हुए पत्तियों के ऊतकों को खुरचते हैं। चरम परिस्थितियों में, पत्तियां मुरझा जाती हैं और पौधा मर जाता है। इस कीट को नियंत्रित करने के लिए जैसे ही कीट दिखाई दे, फसल को नियमित आधार पर नीम के बीज के अर्क (3-4%) से उपचारित किया जाना चाहिए। निवारक रणनीति के रूप में मैलाथियॉन (0.05%) या डाइक्लोरवोस (0.05%) का छिड़काव प्रभावी है।

लीफ माइनर: इस कीट के निम्फ और वयस्क दोनों ही पौधे का रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे पत्तियां पीली होकर सूख जाती हैं। गंभीर संक्रमण के कारण पत्तियां मुड़ जाती हैं, विकास रुक जाता है और अंततः पौधे के कमजोर हिस्से सूखकर मर जाते हैं। इस कीट के प्रबंधन के लिए संक्रमित पौधों के हिस्सों को नष्ट कर दें। इसके अतिरिक्त एजाडिरेक्टिन (5%) का छिड़काव करें।

कटाई उपरांत प्रबंधन और भंडारण

सामान्य परिस्थितियों में चौलाई को कुछ घंटों से ज्यादा समय तक संग्रहीत नहीं किया जा सकता। जब हरी पत्तियों को ठंडे वातावरण में रखा जाता है, तो उन्हें लगभग 3-4 दिनों तक संग्रहीत किया जा सकता है।

मौजूदा समय में दोहरे उद्देश्य वाली खेती के लिए अधिक संभावनाएँ हैं, जिसमें ऐसी फसलों का उत्पादन शामिल है जो लाभदायक और पौष्टिक दोनों हों, ताकि गरीबी एवं कुपोषण को कम करने में मदद मिल सके। साथ ही उष्णकटिबंधीय कृषि प्रणालियों की स्थिरता को भी बढ़ाया जा सके।

चौलाई की खेती से फसलों में विविधता, घरेलू खाद्य सुरक्षा और पोषक तत्वों से भरपूर फसल की उपलब्धता बढ़ती है। इसलिए, राष्ट्रीय कृषि विस्तार सेवाओं, गैर-सरकारी संगठनों और निजी क्षेत्र को मिलकर काम करना चाहिए ताकि अधिक से अधिक किसानों को चौलाई का बीज और रोपण सामग्री उपलब्ध करवाई जा सके। इसके साथ ही लाभकारी उत्पादन के लिए किसान समूह के साथ भागीदारी के आधार पर संरक्षण, प्रसंस्करण और विपणन सुविधाएं प्रदान की जा सकें, ताकि देश में इस फसल का प्रसार हो और इसे व्यापक रूप से अपनाया जा सके।

खीरा फसल में रोगों की रोकथाम

सुमित कुमार[1], **विनय कुमार सिंह**[2] और **जितेंद्र कुमार कुशवाहा**[3]

खीरा कुकुरबिटेसी परिवार की एक प्रमुख सब्जी फसल है। खीरे के फल का उपयोग अधिकतर सलाद और अचार के रूप में किया जाता है। खीरे को स्वास्थ्य के लिए बेहद लाभकारी माना जाता है। इसमें महत्वपूर्ण पोषक तत्त्व जैसे विटामिन सी, विटामिन के, कॉपर, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटेशियम, सल्फर, सिलिकॉन आदि पाए जाते हैं। इसके फल में लगभग 96 प्रतिशत पानी होता है। खीरे में पानी की उपस्थिति शरीर को हाइड्रेटेड रखने में मदद करती है। इसके नियमित उपयोग से कब्ज जैसे रोगों से राहत मिलती है। खीरे की खेती करने वाले किसानों को खीरे में लगने वाले बहुत सारे रोगों से भारी नुकसान का सामना करना पड़ता है। खीरे की फसल मे लगने वाले रोग खीरे के उत्पादन को कम करने के साथ-साथ फल की गुणवत्ता को भी कम कर देते हैं। खीरे की फसल में रोग लगने से 30 से 60% उपज का नुकसान होता है जिससे प्रति एकड़ उत्पादन कम हो जाता है। इस लेख में खीरे में लगने वाले कुछ महत्वपूर्ण रोगों के लक्षण, कारक एवं उनके रोकथाम के बारे मे जानकारी दी गई है।

खीरे की फसल में कई प्रकार के रोग लगते हैं जो उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार से है:

एन्थ्रेक्नोज

रोगकारक-*कोलेटोट्रिचम ऑर्बिक्युलर*

लक्षण

- यह रोग कवक के कारण होता है। इस रोग के पहले लक्षण पत्तियों एवं फलों पर धब्बे के रूप मे दिखाई देते हैं जो पीले या पानी से लथपथ क्षेत्रों के रूप में शुरू होते हैं।
- पत्तियों पर पीले किनारों के साथ भूरे मोटे गोलाकार घाव दिखाई देते हैं; घाव सूख जाते हैं और पत्तियों से गिर जाते हैं।
- नमी की अवस्था में इन धब्बों पर गोंद की तरह का पदार्थ दिखाई देता है।
- हवा में अधिक नमी के साथ बढ़ा हुआ तापमान इस रोग के लिए अनुकूल वातावरण है।

प्रबंधन

- प्रतिरोधी/सहिष्णु किस्म उगाएं।
- बीजों को थीरम या कैप्टॉन से 3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज से उपचारित करें।
- जैविक नियंत्रण एजेंट जैसे बेसिलस सबटिलिस (10 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) का उपयोग बीज शोधन मे करना चाहिए ।
- डाइथेन डी-45 का 2 ग्राम/लीटर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए।

एन्थ्रेक्नोज का प्रकोप

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ (पादप सुरक्षा), [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, [3]विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान), कृषि विज्ञान केन्द्र, मऊ

पत्ती झुलसा (अल्टरनेरिया लीफ ब्लाइट)

रोगकारक- *अल्टरनेरिया कुकुमेरिना*

लक्षण

- यह रोग कवक के कारण होता है। इस रोग मे पीले या हरे प्रभामंडल के साथ छोटे, पीले-भूरे रंग के धब्बे जो सबसे पहले पुराने पत्तों पर दिखाई देते हैं।
- जैसे-जैसे रोग बढ़ता है घाव फैलते हैं और बड़े परिगलित धब्बे बन जाते हैं।
- अक्सर गाढ़े स्वरूप के साथ घाव जम जाते हैं पत्तियां मुड़ने लगती हैं और अंत में मर जाती हैं।

पत्ती झुलसा रोग का प्रकोप

प्रबंधन

- रोग मुक्त बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- प्रतिरोधी किस्में उगानी चाहिए।
- रोग को नियंत्रित करने के लिए पंजीकृत फफूंदनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।
- रोग प्रकट होते ही 15 दिनों के अंतराल पर डाइथेन एम-45 (2 ग्राम/ लीटर पानी) का उपयोग करना चाहिए ।
- क्लोरोथालोनिल का 2 ग्राम/ लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए ।
- बीज उपचार के लिए जैविक एजेंट जैसे बेसिलस सबटिलिस या ट्राइकोडर्मा विरिडी पाउडर को 10 ग्राम/किलोग्राम बीज से शोधित कर बुआई करनी चाहिए।

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू)

रोगकारक- *एरीसिपे सिचोरासीरम और स्पैरोथेका फुलिजिनिया*

लक्षण

रोग से ग्रसित पत्ते

- इस रोग का लक्षण पत्तियों की ऊपरी सतह और संक्रमित पौधों के तनों पर एक सफेद पाउडर के रूप में दिखाई देता है।
- यह रोग एक कवकजनित रोग है। इस रोग के लक्षण पत्तियों, तनों और फलों की ऊपरी सतहों पर सफेद चूर्ण के धब्बे के रूप मे दिखाई देते हैं।
- जैसे-जैसे रोग बढ़ता है, सफेद कवक का विकास पूरी पत्तियों और तने को ढक लेता है।
- संक्रमित पत्तियां पीली, विकृत हो जाती हैं और समय से पहले गिर जाती हैं।

प्रबंधन

- उपलब्ध प्रतिरोधी किस्मों को उगाएं।
- खेत में साफ-सफाई का ध्यान रखना चाहिए।
- गैर कद्दूवर्गीय पौधों के साथ दो से तीन वर्षों का फसल चक्र उपयोगी रहता है।
- जैविक नियंत्रण में एम्पेलोमाइसेस नामक कवक के उपयोग शामिल हैं, जो पाउडरी मिल्ड्यू फफूंदी को नष्ट कर देता है।
- प्रभावी नियंत्रण के लिए सल्फर-आधारित कवकनाशी जैसे कराथेन (0.05%) या हेक्सकोनाजोल (0.1%) का छिड़काव करना चाहिए।

मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू)

रोगकारक- *स्यूडोपेरोनोस्पोरा क्यूबेंसिस*

लक्षण

- यह रोग कवक से होने वाला खीरे का सबसे हानिकारक रोग है।
- आमतौर पर, इस रोग के लक्षण पत्ती की ऊपरी सतह पर धब्बे छोटे पीले अथवा नारंगी रंग के रूप में दिखाई देते हैं।
- जैसे-जैसे धब्बे बड़े होते हैं, वे अनियमित किनारों के साथ भूरे रंग के हो जाते हैं।
- संक्रमित पौधे की निचली पत्ती की सतह पर सफेद या हल्के बैंगनी रंग का पाउडर दिखाई देता है।
- अधिक संक्रमण की अवस्था में इस रोग में पत्तियां सूख जाती हैं और पौधा नष्ट हो जाता है।

प्रबंधन

- गिरे हुए पत्तों, संक्रमित फलों और अन्य पौधों के अवशेषों को हटा देना चाहिए और नष्ट कर देना चाहिए।
- सघन पौधरोपण से बचना चाहिए, पंक्तियों के बीच अधिक दूरी रखने से आर्द्रता को कम करने तथा वायु प्रवाह को बेहतर बनाने में सहायक होता है, जिससे रोगों के विकास को रोका जा सकता है।
- एक या दो मौसमों के लिए टमाटर, बैंगन और जड़ वाली फसलों के साथ फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- अधिक ऊपरी सिंचाई से बचें और पत्तियों को तेजी से सुखाने के लिए

पत्ते पर रोग का संक्रमण

सुबह देर से सिंचाई करें।

- रोग की तीव्रता और मौसम की स्थिति के आधार पर 7-14 दिनों के अंतराल पर रसायनों का छिड़काव करना चाहिए।
- मेटलैक्सिल 4% + मैंकोजेब 64% को 2 ग्राम /लीटर पानी मे मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती धब्बा (एंगुलर लीफ स्पॉट)

रोगकारक- *स्यूडोमोनास सिरिंज*

लक्षण

- एंगुलर लीफ स्पॉट एक जीवाणु जनित रोग है। इसके प्रारंभिक लक्षण पत्तियों पर छोटे, कोणीय, भूरे या भूसे के रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।
- संवेदनशील किस्मों पर, यह धब्बे एक पीले चकते से घिरे हुए दिखाई देते हैं। नमी वाले मौसम में, संक्रमित ऊतकों से एक दूधिया द्रव निकलता है।
- रोग तने एवं फलों को भी प्रभावित करता है। ज्यादा नमी होने पर यह रोग आसानी से फैलता है।

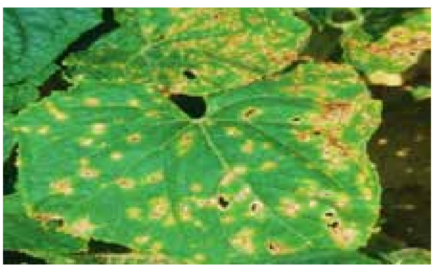

पत्ती धब्बा रोग का प्रकोप

प्रबंधन

- रोगमुक्त बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना चाहिए।
- एक खेत में कम से कम दो वर्षों तक कद्दूवर्गीय फसलों (खीरा, कुम्हड़ा, कद्दू) के साथ गैर-कद्दूवर्गीय फसलों का चक्रीकरण करना चाहिए।
- गर्म पानी में 30 मिनट के लिए 50^0 से. तापमान मे बीज का उपचार करना चाहिए।
- रोगाणु को मिट्टी में जीवित रहने से रोकने के लिए फसल कटाई के बाद संक्रमित पौधों के अवशेषों को हटा कर नष्ट कर देना चाहिए।
- स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट+टेट्रासाइक्लिन हाइड्रोक्लोराइड को 6 ग्राम /10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
- कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 2 ग्राम / लीटर पानी मे मिला कर छिड़काव करना चाहिए।

फल सड़न (बेली रॉट)

रोग कारक- *राइजोक्टोनिया सोलानी*

लक्षण

- यह कवक द्वारा होने वाला रोग है। इस रोग के लक्षण फल के निचले हिस्से पर पानी से भीगे हुए, भूरे रंग के धब्बे के रूप मे दिखाई देते हैं। विशेष रूप से जहां यह मिट्टी को छूता है।
- घाव धंस जाते हैं, गड्ढे बन जाते हैं और अंततः सूख सकते हैं, लेकिन फल आमतौर पर दृढ़ रहता है।
- रोग के पूर्ण विकसित होने या सड़न में परिवर्तित होने से पहले फल की सतह पर पीले-भूरे रंग का विकार भी दिखाई देता है।

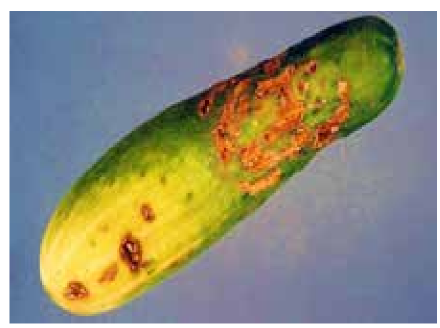

फल सड़न से ग्रसित फल

प्रबंधन

- अर्ध-शुष्क और शुष्क उत्पादन क्षेत्रों में प्लास्टिक मल्च का उपयोग करना चाहिए।
- गैर-कद्दूवर्गीय पौधों के साथ फसलों का चक्रीकरण करने से मिट्टी में रोगाणुओं की मात्रा को कम करने में मदद मिलती है ।

मोजैक रोग

रोग कारक- *खीरा मोजैक वायरस*

लक्षण

- यह एक वायरस से होने वाला गंभीर रोग है।
- खीरे का मोजैक वायरस चूसक कीटों के माध्यम से फैलता है।
- पौधे की पत्तियाँ नीचे की ओर मुड़ जाती हैं और पत्ती का आकार सामान्य से छोटा होता है।
- पत्ते विशिष्ट पीले मोजैक में ढके हुए दिखाई देते हैं।

रोग से प्रभावित पत्तियां

- संक्रमित पौधों पर फूल एवं फल हरी पंखुड़ियों से विकृत हो जाते हैं; और आकार में छोटे हो जाते हैं।

प्रबंधन

- वायरस का नियंत्रण काफी हद तक एफिड वेक्टर के नियंत्रण पर निर्भर करता है।
- कुछ प्रतिरोधी किस्में उपलब्ध हैं, उनका उपयोग करना चाहिए ।
- नियमित रूप से खेतों का निरीक्षण करना चाहिए और लक्षण दिखाई देने पर संक्रमित पौधों को तुरंत हटाकर नष्ट कर देना चाहिए। इससे वायरस को अन्य स्वस्थ पौधों में फैलने से रोकने में मदद मिलती है।
- उन खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए जो वायरस के प्रसार में मदद करते हैं, जैसे पिगवीड और नाइटशेड आदि।
- विषाणु वाहक कीट एफिड के नियंत्रण के लिए डाइमेथोएट का 0.05% छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर करना चाहिए, लेकिन फल लगने के बाद रासायनिक दवा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- ऐसी अवरोधक फसलें लगानी चाहिए जो एफिड को मुख्य खीरा की फसल से दूर आकर्षित करें।
- खीरे के खेत मे एफिड को पकड़ने और मारने के लिए पीले चिपचिपे जाल लगाने चाहिए।

जीवाणु जनित मुरझान (बैक्टीरियल विल्ट)

रोग कारक- *इरविनिया ट्रेचीफिला*

लक्षण

- यह एक जीवाणु से होने वाला रोग है। इसमें संक्रमित पौधों में शुरू में पत्तियां मुरझाने और सूखने लगती हैं।
- जैसे-जैसे पत्तियाँ मुरझाती और सिकुड़ती हैं, तने अचानक सूख सकते हैं। बाद में, मुरझाना पूरी शाखाओं और बेलों तक फैल जाता है।
- पानी की अधिक कमी के दौरान दिन के मध्य में पौधा मुरझाने लगता है। रात में बेल ठीक हो जाती हैं।
- हालाँकि, अंततः पूरी बेल मुरझाकर गिर जाती हैं।

प्रबंधन

- तने को काटकर और धीरे-धीरे दोनों सिरों को अलग करके रोग की पुष्टि की जा सकती है।
- खीरे में जीवाणुजनित विल्ट का प्रबंधन मुख्य रूप से खीरा बीटल को नियंत्रित करके किया जा सकता है, क्योंकि यह रोग फैलाने वाला वाहक है।
- पौधों को जाल या छिद्रयुक्त कपड़े से ढककर खीरा बीटल को पौधों को खाने और संक्रमित करने से रोक सकते हैं।
- इससे पहले कि खीरा बीटल को अंडे देने का मौका मिले (अप्रैल-जून)। पाइरेथ्रिन, पर्मेथ्रिन या नीम ऑयल (5 ग्राम/लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए ।
- रोग को फैलने से रोकने के लिए संक्रमित पौधों को तुरंत खेत से हटा देना चाहिए।
- खीरा बीटल को पौधों पर आक्रमण करने और बैक्टीरिया को फैलाने से रोकने के लिए कार्बेरिल, मैलाथियॉन या रोटेनोन जैसे कीटनाशकों का उपयोग करना चाहिए।
- पौधों पर बीटल और उनके अंडों की नियमित जांच करनी चाहिए, विशेष रूप से पत्तियों के नीचे की तरफ, तथा अंडों की थैलियों को नष्ट कर देना चाहिए।

- मिट्टी को गहराई से (20-25 सें.मी.) पलटने से रोगाणुओं के बीजाणु दब जाते हैं, जिससे फलों को संक्रमित करने की उनकी क्षमता कम हो जाती है।
- फसल के अवशेषों को कटाई के तुरंत बाद खेत से हटा देना चाहिए।
- रोपण से पहले 1 कि.ग्रा./एकड़ की दर से ट्राइकोडर्मा विरिडी या ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम का प्रयोग करने से रोगाणु के प्रसार को कम करने में मदद मिलती है।

खीरे की स्वस्थ उपज

- रोग के लक्षण दिखाई देने पर फ्लूसिलाजोल रासायनिक दवा का 2 ग्राम/लीटर पानी मे मिला कर छिड़काव करना चाहिए।

फल विगलन (फ्रूट रॉट)

रोगकारक - *पाइथियम एफ्रानिडर्मेटम*

लक्षण

- यह रोग एक कवकजनित रोग है, इस रोग के प्रारंभिक लक्षण में फल पानी से भीगा हुआ या दबा हुआ धब्बा दिखाई देता है, अक्सर फल के निचले हिस्से पर जहां यह मिट्टी के संपर्क में आता है।
- यह धब्बा तेजी से फैलता है, तो एक नरम, परिगलित (मृत) क्षेत्र बन जाता है।
- प्रभावित फल गहरे भूरे या पानी से भीगे हुए दिखाई देते हैं, और छिलका थोड़ा गहरा या हल्का भूरा सा दिखाई देता है।
- कुछ मामलों में, सड़े हुए क्षेत्रों पर सफेद, रुई या ऊनी फफूंद की वृद्धि (माइसेलियल मैट) दिखाई देती है, खासकर जब आर्द्रता अधिक हो।

रोगग्रसित फल

प्रबंधन

- प्रमाणित रोगमुक्त बीज का उपयोग करना चाहिए।
- फलों को मिट्टी से छूने से रोकने के लिए प्लास्टिक मल्च या अन्य सामग्री का उपयोग करना चाहिए।
- ड्रिप सिंचाई को प्राथमिकता देनी चाहिए है, विशेष रूप से फल बनने के दौरान, ताकि पत्तियों की नमी को कम किया जा सके, क्योंकि वह रोग के विकास के लिए अनुकूल होती है।
- मिट्टी में रोगाणुओं की जनसंख्या को कम करने के लिए कम से कम दो वर्षों तक कद्दूवर्गीय फसलों (खीरा, कुम्हड़ा, खरबूजा) को अन्य गैर-पोषक फसलों के साथ उपयोग मे लाना चाहिए।
- रोग को फैलने से रोकने के लिए संक्रमित पौधों और फलों को हटा देना चाहिए और खेत के बाहर नष्ट कर देना चाहिए।
- कॉपर आधारित फफूंदनाशक रसायन के छिड़काव से पत्तियों पर लगने वाले रोगों से फलों के संक्रमण को कम करने में मदद मिलती है।
- रोग के लक्षण खेत मे दिखाई देने पर क्लोरोथालोनिल का 2 ग्राम/लीटर पानी मे मिला कर छिड़काव करने से रोग को कम किया जा सकता है।

अतः नियमित देखभाल एवं सही समय पर उपचार द्वारा विभिन्न रोगों से फसल सुरक्षा एवं उपज में वृद्धि की जा सकती है।

आम में फल मक्खी का जैविक प्रबंधन

मारुवरसी पी[1], **संजय कुमार सिंह**[2], **कमला जयंती**[3], **शंकरन एम**[4], **जयंतीमाला बी.आर**[5] और **मेघा आर**[6]

ओरिएंटल फल मक्खी के प्रकोप से फलों को करीब 15-90% तक नुकसान होता है। इससे आम उत्पादकों का बहुत ज्यादा नुकसान होता है। इस तरह का उच्च वित्तीय नुकसान लगातार अनियमित मौसम की घटनाओं और बागों की मिट्टी के खराब प्रबंधन के कारण होता है। फल मक्खी से प्रभावित फल अखाद्य होते हैं और रसायनों का उपयोग प्रभावी होने के बावजूद अवशेष इस समस्या को और भी जटिल बना देती है, जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सीमित हो जाता है। सुरक्षित और पर्यावरण के अनुकूल सस्य क्रियाएं अब उपलब्ध हैं जिन्हें किसान सामुदायिक स्तर पर अपना सकते हैं ताकि फल मक्खी के संकट को कम किया जा सके। साथ ही घरेलू एवं निर्यात बाजारों में सुरक्षित एवं उच्च गुणवत्ता वाली उपज का सफलतापूर्वक व्यापार किया जा सके। आम में फल मक्खियों को कम करने के लिए एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियों का सुझाव दिया जा रहा है। यह प्रबंधन अन्य लाभकारी कीटों को नष्ट किए बिना और फलों की गुणवत्ता के मापदंडों को कम किए बिना विभिन्न सुरक्षित विकल्पों को समय पर अपनाकर कीटों की आबादी को कम करने में मदद करेगा।

आम (*मैंगीफेरा इंडिका*) एनाकार्डियस परिवार से संबंधित है, जिसे 'फलों के राजा' के रूप में जाना जाता है। आम का वैश्विक उत्पादन प्रति वर्ष 59.34 मिलियन मीट्रिक टन से अधिक होने का अनुमान है, जबकि भारत 2.401 मिलियन हैक्टर (2024-2025) के क्षेत्र से 24.42 मिलियन टन के कुल उत्पादन के 40% से अधिक के साथ शीर्ष पर है।

आम को एस्कॉर्बिक एसिड, कैरोटीनॉइड्स और फेनोलिक यौगिकों जैसे आहार एंटीऑक्सीडेंट का एक अच्छा स्रोत माना जाता है। वर्तमान में, भारत, दुनिया के विभिन्न देशों को ताजे आमों का एक बड़ा हिस्सा निर्यात कर रहा है। हालांकि, फलों की मक्खी, बीज-घुन आदि का अंतर्निहित संक्रमण, इन्हीं प्रमुख बाधाओं के रूप में माना जाता है क्योंकि इन कीटों को संगरोध कीटों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। इसके अलावा, देश के कई हिस्सों में प्राच्य मक्खियों से संक्रमित फलों की अनुमति नहीं है।

पिछले कई दशकों के दौरान, भारतीय आम उत्पादकों को बहुत से नुकसान का मुख्य रूप से ऐसे प्रतिबंधित संगरोध कीटों के संक्रमण के कारण ताजे आमों के निर्यात में सामना करना पड़ रहा है।

कई फल मक्खियों की प्रजातियों को दुनियाभर में बागवानी फसलों की विस्तृत विविधता को प्रभावित करने के लिए जाना जाता है। आमों पर प्रकोप करने वाली सबसे आम प्रजातियां हैं *बैक्ट्रोसेरा डोरसालिस* (प्राच्य फल मक्खी), *बी. जोनाटा* (आड़ू फल मक्खी) *बी. करेक्टा* (अमरूद फल मक्खी) आदि। वयस्क और लार्वा दोनों ही फलों को नुकसान पहुँचाते हैं। फल मक्खियाँ शारीरिक रूप से परिपक्व फलों के छिलकों के नीचे अंडे देती हैं और इसकी सुई जैसे ओविपोसिटर से छिद्रण करती हैं।

अंडे से निकलने पर, पीले रंग के लार्वा फलों के गूदे को खाते हैं और पूरी तरह से परिपक्व होने पर फल से बाहर कूदते हैं, जमीन पर गिरते हैं, और मिट्टी के नीचे गहराई तक जाते हैं। इस प्रकार, ये लार्वा, गूदे का सेवन करने पर, इसे बदबूदार और रंगहीन बना देते हैं। जिन फलों को संक्रमित किया गया है, उन पर भूरे रंग के सड़ने के धब्बे हो जाते हैं और अंततः वे जमीन पर गिर जाते हैं। ये फल तब फल मक्खी की आबादी के निर्माण का स्रोत बन जाते हैं और पूरे बगीचे और पड़ोस के बागों में भी फैल जाते हैं।

प्रबंधनः फल मक्खियों का प्रबंधन विभिन्न क्षेत्रों में उनके अनुकूलन, उच्च पॉलीफैगिस और तेजी से प्रजनन के कारण

एकत्रित वयस्क फल मक्खियाँ

[1]शोध छात्रा-फल विज्ञान, [2]उप महानिदेशक (बागवानी), [3]राष्ट्रीय प्रोफेसर और प्रधान वैज्ञानिक-कीट विज्ञान, [4]प्रमुख और प्रधान वैज्ञानिक-फल विज्ञान, [5]वैज्ञानिक-कीट विज्ञान, भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, हेसरघट्टा झील पोस्ट, बेंगलुरु 560 089, कर्नाटक

फल मक्खी से संक्रमित आम के फल

चुनौतीपूर्ण है। फल मक्खियों के संकट का प्रबंधन करने के लिए दुनिया भर में रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। दूसरी ओर, रासायनिक कीटनाशकों को अक्सर महत्वपूर्ण स्वास्थ्य और पर्यावरणीय संकट से जोड़ा जाता है। रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के परिणामस्वरूप विभिन्न बागवानी उत्पादों को दुनियाभर के बाजारों में रोका जा रहा है, विशेष रूप से आम के फल। इसके अलावा, कीटनाशक महंगे होते हैं और अक्सर ये संसाधन गरीब किसानों के लिए पहुंच से बाहर होते हैं।

एकीकृत कीट प्रबंधन

पारंपरिक कीटनाशकों के व्यापक उपयोग के लिए एक अधिक पर्यावरण के अनुकूल विकल्प के रूप में एकीकृत कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.) प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है। आई.पी.एम प्रणाली को लागू करने से फल मक्खी के प्रकोप के कारण आम के नुकसान को कम किया जा सकेगा। इससे उत्पादन लागत में कटौती, उत्पादक के आय को बढ़ावा, घरेलू और निर्यात के दोनों बाजारों की मांगों को पूरा करने के लिए आम की गुणवत्ता एवं उत्पादकता में वृद्धि कर बाजार तक पहुंच और प्रसंस्करण में वृद्धि होगी।

आई. पी. एम. रणनीति एक व्यापक दृष्टिकोण है जो व्यक्तिगत प्रबंधन विधि के रूप में काम करने के बजाय एक-दूसरे के पूरक प्रथाओं के संयोजन का उपयोग करती है। प्रबंधन की दक्षता मुख्य रूप से फल मक्खी की आबादी पर निर्भर करती है। इसलिए प्रबंधन के कार्यान्वयन से उपचार के समय के सटीक निर्धारण में सहायता मिलेगी ताकि उनकी प्रभावशीलता को अधिकतम किया जा सके और कीटनाशक स्प्रे की संख्या को कम किया जा सके। इसलिए, बागों में फल मक्खियों की आबादी की निरंतर निगरानी एवं घटनाओं का सटीक पूर्वानुमान एक प्रभावी प्रबंधन का हिस्सा है।

भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु की कीट जैव-नियंत्रण प्रयोगशाला एकीकृत प्रबंधन रणनीतियों पर काम कर रही है और आम की खेती के तहत पर्याप्त क्षेत्र वाले संस्थान द्वारा विभिन्न गांवों में भी इसका प्रदर्शन किया गया है। आम में फल मक्खी की घटना को कम करने के लिए विभिन्न विकल्पों के साथ पर्यावरण के अनुकूल एकीकृत प्रबंधन मॉड्यूल इस प्रकार हैं;

- 100 मि.ली. 0.1% मिथाइल यूजेनॉल (1 मि.ली./ली.) और 0.05% लैम्ब्डा-साइहलोथ्रिन 5% ईसी) के साथ 250 मि.ली. चौड़े मुंह वाली बोतलों में 2 मि.ली./ली. के साथ नर मक्खी विनाश के लिए लटकने वाले तंत्र के साथ चारा पौधे का ट्रैप का उपयोग भी किया जाना चाहिए।

फल मक्खी ट्रैप

- एक अन्य विषैले चारे में 100 ग्राम गुड़ और 2 मि.ली. डेकामेथ्रिन 2.8 ईसी को एक लीटर पानी में मिलाकर सप्ताह में एक बार पेड़ के तने के पास छिड़का जाता है। चारे को आसपास के सभी पौधों और झाड़ियों पर भी छिड़काव करना चाहिए।
- फलों के थैले (जालीदार/कागज) के परिणामस्वरूप फलों की मक्खी से सुरक्षा के साथ-साथ की ऐसी घटना

गंभीर आर्थिक क्षति

फल मक्खियाँ (डिप्टेरा: टेफ्रिटिडे) वैश्विक महत्व की सबसे गंभीर और विनाशकारी कीट प्रजातियाँ हैं जो पैदावार को कम करके फलों की उपज को सीधे नुकसान पहुँचाती हैं। इनका प्रकोप न केवल उपज को कम करता है, बल्कि फल की गुणवत्ता पर भी असर करता है, जिससे यह मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। इन फल मक्खियों के कारण होने वाला कुल अनुमानित नुकसान 27-42% तक है और गंभीर मामलों में यह आम में 90% तक पहुंच सकता है, जबकि अमरूद में 90% तक भी नुकसान की सूचना मिली है। इसके अलावा, फल मक्खी-संक्रमित उत्पादों पर संगरोध प्रतिबंध लाभदायक अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में निर्यात को सीमित करते हैं। उदाहरण के लिए, यूरोपीय संघ (ईयू) ने भारतीय आमों के आयात पर प्रतिबंध लगाने का फैसला किया है, जिसके परिणामस्वरूप भारी राजस्व नुकसान हुआ है।

फल मक्खी के प्रबंधन में प्रभावी

सारणी: उत्तर भारत में प्राकृतिक फल मक्खी के प्रकोप के लिए आम की विभिन्न किस्मों की क्षेत्रीय स्तर पर प्रतिक्रिया

संक्रमण दर	किस्में
प्रतिरक्षा (<10%)	भदौरा, लंगड़ा, ओलूर, ऐपेमिडी, बॉम्बे ग्रीन
अत्यधिक प्रतिरोधी (1-10%)	अर्का नीलाचल केसरी, नीलम, नीलफोंसो पूसा अरुणिमा, पूसा लालिमा, पूसा श्रेष्ठ, पूसा पीतांबर, रत्ना, सोनपरी, रतौल, लखनऊ सफेदा, हिमायूदीन, पैरी, सिन्धु
प्रतिरोधी (11-20%)	आम्रपाली, दशहरी, गुलाब खास, पूसा सूर्या, राजापुरी, हेडन
मध्यम प्रतिरोधी (21-30%)	जदांलु, मल्लिका, मालदह, पूसा मनोहरि, रत्तना
संवेदनशील (31-40%)	अल्फोंसो, बंगनापल्ली, हिमसागर, केसर, सेंसेशन, तोतापुरी
अत्यधिक संवेदनशील (≥ 40%)	चौसा, फजली, टॉमी ऐटकिन्स

नहीं होगी जिससे कृषि-रासायनिक अवशेष-मुक्त फल उत्पादन होगा।

आम की थैलाबंदी

- कटाई से तीन सप्ताह पहले डिकैमेथ्रिन 2.8 ईसी / 0.5 मि.ली./ली. + एजाडिरेक्टिन (0.3%) (नीम का तेल) 2 मि.ली. / लीटर के साथ छिड़काव करें और सभी परिपक्व फलों को समय पर तुड़ाई की आवश्यकता होती है।
- कटाई के उपरान्त की क्रियाओं और आयातक देशों की आवश्यकता के अनुसार गर्म पानी, वाष्प गर्मी या कम खुराक वाले गामा-विकिरण के लिए श्रेणीबद्ध फलों का उपचार किया जाना चाहिए।

सिफारिशें

- प्रतिरोधी/सहिष्णु किस्मों (अगेती एवं पछेती) को बढ़ावा दें।
- परिपक्व फलों की जल्द तुड़ाई करें फलों की परिपक्वता के इस चरण के रूप में, फसलें फल मक्खी के प्रकोप के लिए अतिसंवेदनशील नहीं होती हैं।
- वृक्षों पर सभी संक्रमित फलों को इकट्ठा कर उन्हें हर दूसरे दिन जमीन में खाई बनाकर दफन करें।
- बागों में सभी जंगली वृक्षों को हटाना, जो कीटों के प्रजनन स्थल के रूप में प्रभावी होते हैं।
- प्यूपा को सूरज की रोशनी के संपर्क में लाने के लिए ऊपरी मिट्टी को 10 सें.मी. तक की गहरी जुताई और उन्हें मारना एवं संक्रमण को फैलने से रोकना प्रभावी है।
- फल विकास चरण के दौरान अंतिम फसल तक 6 प्रति एकड़ की दर से मिथाइल यूजेनॉल प्लाईवुड ट्रैप स्थापित करें और यदि आवश्यक हो, तो रासायनिक कीटनाशकों का न्यूनतम उपयोग करें।

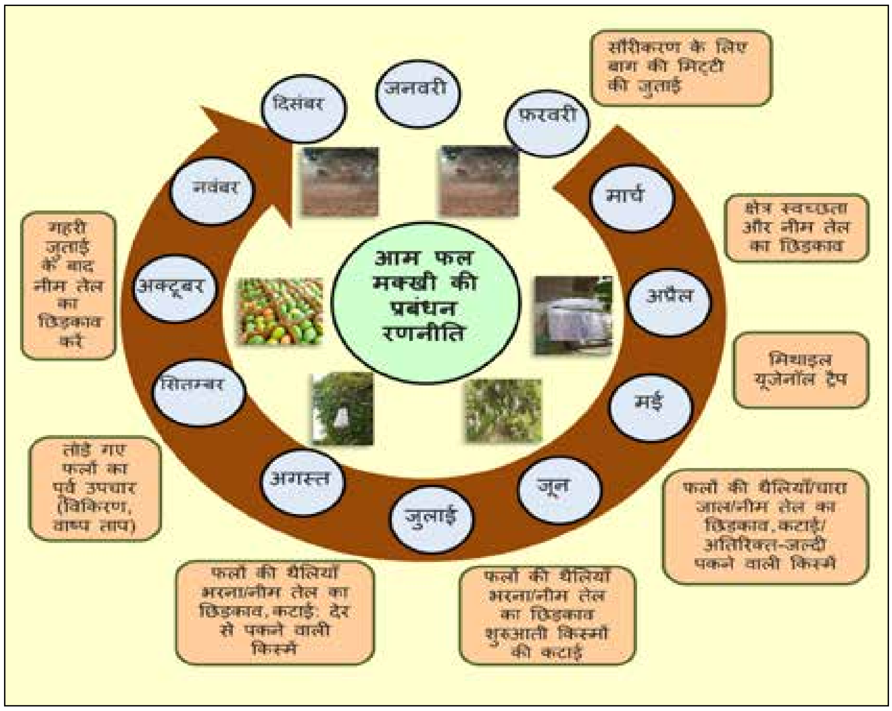

फल मक्खी का एकीकृत प्रबंधन

- **नए कीटनाशक अणुओं का उपयोग:** लैम्बडा-साइहलोथ्रिन 5% ईसी/2 मि.ली./ली. (कराटे®) या थायमेथोक्सम (12.6%) + लैम्ब्डा-साइहलोथ्रिन (9. 5%) जेडसी (अलिका® / 0.4 मि. ली./ली. या क्विनालफॉस 2 5% ईसी (एकालक्स® / 2 मि.ली./ली. + नीम का तेल (इकोनीम प्लस / 0.3%) का छिड़काव आम में फलों की मक्खियों को उनकी उच्च आबादी की स्थिति में नियंत्रित करने में मदद करेगा।
- **फल मक्खी के जीवन चक्र को तोड़ना:** आम का मौसम समाप्त होने के बाद फल मक्खियाँ अपने जीवन चक्र को पूरा करने के लिए वैकल्पिक मेजबान पौधे/ वृक्षों की तलाश करती हैं। इस समय तरबूज, खरबूजा, लौकी, नीबू, अमरूद, पपीता, भिंडी इत्यादि जैसी सब्जियां उगाई जाती हैं। आसपास के क्षेत्र वैकल्पिक मेजबान के रूप में कार्य करते हैं और अंडे से निकलने के बाद वयस्क विकासशील फलों को संक्रमित करते हैं। इस तरह, फल मक्खी का जीवन चक्र चलता रहता है।
- आईपीएम मॉड्यूल के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए समुदाय आधारित एकीकृत कीट प्रबंधन अनुसूची को अपनाया जाता है और इस प्रकार फल मक्खी के प्रभावी नियंत्रण के लिए इसका पालन करने की आवश्यकता है।
- स्वास्थ्य के प्रति जागरूक आबादी के मद्देनजर, एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। आम में फल मक्खी के संकट के प्रबंधन के लिए, कीटनाशक अवशेषों को कम करने के लिए आम उत्पादकों द्वारा फल विकास चरण से ही सुरक्षित प्रथाओं को अपनाने की आवश्यकता है। कीटनाशक-मुक्त आम उत्पादन के लिए सुरक्षित एकीकृत रणनीति का सुझाव दिया गया है, जो 95-98% तक संक्रमण को नियंत्रित करती है।

रणनीति

भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु द्वारा आम सहित विभिन्न फल उत्पादकों को कम लागत वाली फेरोमोन ट्रैप तकनीक प्रदान की जा रही है, जो इससे काफी लाभान्वित हुए हैं। एकीकृत दृष्टिकोण ने इस कीट के जीवन चक्र को तोड़ने का सुझाव दिया, जो स्टोन वीविल के अलावा प्रमुख संगरोध कीट है और पर्यावरण के अनुकूल सुरक्षित उत्पादन को बढ़ावा देता है। आईपीएम प्रणाली ने हालांकि विभिन्न आईपीएम घटकों से संबंधित 500-2500 रुपये प्रति हैक्टर से लेकर उत्पादन की लागत को जोड़ा, बेहतर फल ग्रेड, आकार और गुणवत्ता के संदर्भ में लाभ प्राप्त हुआ, जिससे खेत पर बेहतर मूल्य प्राप्ति हुई, जो 1:1.51 से 1:3.65 के बी:सी अनुपात के साथ प्रति हैक्टर आधार पर 2,000 से 7,500 रुपये अतिरिक्त ही पाई। ■

फूलों की जलवायु अनुकूल खेती

हेमालता सिंह, रोशनी अग्निहोत्री, ज्योत्स्नारानी प्रधान और **यश भारद्वाज**

जलवायु अनुकूल कृषि, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के अनुकूलन और शमन के लिए एक स्थायी रणनीति के रूप में उभरकर सामने आई है। विविधीकरण जलवायु लचीलापन की एक आधारशिला है, और फूलों की खेती इसे प्राप्त करने का एक प्रभावी साधन प्रदान करती है। पारंपरिक खाद्य फसलों के विपरीत, जो जलवायु विविधता से प्रभावित हो सकती हैं, कई फूलों की फसलों की वृद्धि जल्दी होती है और ये विशेष मौसम पर कम निर्भर होते हैं, इससे किसान बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, फूलों की खेती उच्च आय संभावित प्रदान करती है, क्योंकि फूल घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में उच्च मूल्यों पर बिकते हैं। किसान कृषि प्रणालियों में फूलों को शामिल करके, जलवायु-संवेदनशील फसलों पर अपनी आर्थिक निर्भरता कम कर सकते हैं। इस प्रकार किसान फूलों की खेती के माध्यम से फसल विफलता से जुड़े वित्तीय जोखिम को भी कम कर सकते हैं।

फूलों की खेती (फ्लोरीकल्चर), जिसमें कटे हुए फूल, गमले के पौधे, कट फोलिएज और उद्यान पौधे शामिल हैं। यह कृषि के सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक क्षेत्रों में से एक है। वर्तमान में 134 से अधिक देशों की वैश्विक फ्लोरीकल्चर व्यापार में सक्रिय भागीदारी है, जहां यूरोप और उत्तरी अमेरिका के विकसित देश प्रमुख उपभोक्ता हैं। फ्लोरीकल्चर उद्योग का वैश्विक बाजार वर्ष 2022 में 49.8 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर वर्ष 2033 तक 106.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंचने का अनुमान है।

डॉ राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार

भारत में लगभग 313 हजार हैक्टर क्षेत्रफल में फूलों की खेती होती है। प्रमुख फूल उत्पादक राज्य कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात हैं। भारतीय फ्लोरीकल्चर बाजार का मूल्य वर्ष 2023 में लगभग ₹15,000 करोड़ था और अगले दशक में इसके 10-15 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ने का अनुमान है। फूलों की खेती एक आशाजनक दृष्टिकोण के रूप में उभरती है, जो पारिस्थितिक, आर्थिक और सामाजिक लाभ प्रदान करती है।

फूलों की खेती, जैव विविधता को प्रोत्साहित करने और पारिस्थितिक तंत्र को मजबूत बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस लेख में चर्चा की गई है कि कैसे फूलों की खेती जलवायु अनुकूल कृषि में योगदान कर सकती है।

फूलों की संरक्षित खेती

फूलों की संरक्षित खेती एक नवाचारात्मक कृषि तकनीक है जो पौधों के चारों ओर की सूक्ष्म जलवायु को नियंत्रित करके उनके विकास को अनुकूलित करती है। यह विधि जलवायु परिवर्तन द्वारा उत्पन्न चुनौतियों से फूलों को अनुकूलित और जीवित रहने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि यह प्रकाश, तापमान और आर्द्रता के लिए आदर्श परिस्थितियाँ प्रदान करती है। संरक्षित खेती का एक प्रमुख लाभ यह है कि यह तापमान को नियंत्रित करने में सक्षम है, जिससे फूलों को अत्यधिक तापमान में उतार-चढ़ाव

से बचाया जा सकता है। इसी तरह, यह आर्द्रता के स्तर को भी नियंत्रित करती है, जिससे फूलों को नमी मिलती है जो उनके विकास के लिए आवश्यक है। इससे अत्यधिक सूखा या अधिक पानी की समस्या से बचाव होता है। इसके अतिरिक्त, प्रकाश की स्थिति भी नियंत्रित की जा सकती है, जिससे फूलों को उचित मात्रा में सूरज की रोशनी मिलती है, जो प्रकाश संश्लेषण और समग्र पौधे की सेहत के लिए आवश्यक है।

संरक्षित खेती फूलों की सुगंध को बनाए रखने में भी मदद करती है, क्योंकि यह उन पर्यावरणीय परिस्थितियों को बनाए रखती है जो खुशबू उत्पन्न करने वाले रासायनिक यौगिकों के लिए जरूरी होती हैं। इसके अलावा, संरक्षित खेती के कई अन्य महत्वपूर्ण लाभ हैं। यह फसल की गुणवत्ता में सुधार करती है, यह एक ऐसा वातावरण प्रदान करती है जो कीटों और रोगों को कम करता है, जिससे फूल स्वस्थ और आकर्षक उत्पादित होते हैं। यह फसल की उपज को भी बढ़ाती है, क्योंकि यह फूलों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाती है, जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है।

ग्लैडियोलस की खेती

संरक्षित खेती साल भर उत्पादन प्रदान करती है, जिससे मौसम में बदलाव के बावजूद फूलों की उपलब्धता लगातार बनी रहती है। संरक्षित खेती के लिए विभिन्न संरचनाओं का उपयोग किया जाता है, जैसे ग्रीनहाउस, नेट हाउस, शेड हाउस, हॉटबेड्स, कोल्ड फ्रेम्स और लो टनल। ये जलवायु और फसल की आवश्यकताओं के आधार पर विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयुक्त होते हैं। यह तकनीक न केवल जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करती है, बल्कि फूलों के उत्पादन को अधिक कुशल और टिकाऊ बनाने में भी योगदान करती है।

चुनौतियां का समाधान

हालांकि फूलों की खेती में जलवायु अनुकूल कृषि के लिए जबरदस्त संभावनाएं हैं, लेकिन यह चुनौतियों से मुक्त नहीं है। किसानों को सीमित बाजार पहुंच, उच्च आदान लागत और अपर्याप्त तकनीकी ज्ञान जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए निम्न उपाय सुझाए गए हैं।

- **क्षमता निर्माण:** किसानों को स्थायी फूलों की खेती प्रथाओं और बाजार तक पहुंच के विकास पर प्रशिक्षण प्रदान करना।
- **अनुसंधान और विकास:** सूखा-सहिष्णु, रोग-प्रतिरोधी और उच्च उपज देने वाली फूलों की किस्मों के विकास में निवेश करना।
- **नीति समर्थन:** सब्सिडी, बीमा और क्रेडिट तक पहुंच के माध्यम से फूलों की खेती को प्रोत्साहित करने वाली नीतियों को लागू करना।
- **इन्फ्रास्ट्रक्चर विकास:** कटाई के बाद के नुकसान को कम करने के लिए कोल्ड स्टोरेज सुविधाओं और प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना।
- **बाजार विस्तार:** फूलों और मूल्य वर्धित उत्पादों के लिए घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों को बढ़ावा देना।

जलवायु तनाव सहिष्णुता

कई फूल प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के प्रति अनुकूल होते हैं, जिससे वे जलवायु अनुकूल कृषि के लिए एक आदर्श विकल्प बन जाते हैं। सूखा-सहिष्णु फूल, जैसे जिनिया और कॉसमॉस, सीमित जल उपलब्धता के तहत पनप सकते हैं, जिससे सूखे के दौरान भी आय का एक विश्वसनीय स्रोत प्रदान किया जा सकता है। इसी तरह, सूरजमुखी और कुछ सजावटी घास जैसे फूल लवण या खराब गुणवत्ता वाली मिट्टी में उग सकते हैं, इसके माध्यम से अनुपयोगी भूमि को आर्थिक रूप से व्यवहार्य स्थानों में बदल सकते हैं। इन तनाव-सहिष्णु किस्मों का लाभ उठाकर, किसान जलवायु-प्रेरित तनावों के खिलाफ लचीलापन बना सकते हैं।

एकल फसल प्रणाली, जिसमें बड़े क्षेत्र में एक ही फसल उगाई जाती है, कृषि प्रणालियों को कीट, रोगों और जलवायु संबंधी आपदाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बनाती है। मौजूदा फसल प्रणालियों में फूलों को शामिल करना इस निर्भरता को विविधता प्रदान करके कम कर सकता है। खाद्य फसलों के साथ फूलों की अंत:फसल न केवल कुल फसल विफलता के जोखिम को कम करती है बल्कि मृदा की उर्वरता और कीट प्रबंधन में भी सुधार करती है। उदाहरण के लिए, सब्जियों के साथ गेंदे लगाना नेमाटोड और अन्य कीटों को हतोत्साहित करने के लिए जाना जाता है, जिससे रासायनिक इनपुट की आवश्यकता कम हो जाती है।

मूल्यवर्धित उत्पाद

फूलों की खेती का एक प्रमुख लाभ मूल्य संवर्धन की संभावना है। गुलाब, लैवेंडर और चमेली जैसे फूल सौंदर्य प्रसाधन, आवश्यक तेल और इत्र जैसे उच्च-मूल्य वाले उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में कार्य करते हैं। इन उत्पादों में फूलों के प्रसंस्करण से किसानों के लिए अतिरिक्त आय के स्रोत बनते हैं, जिससे उनके कृषि कार्य आर्थिक रूप से लचीले बनते हैं। इसके अतिरिक्त, सूखे फूल, पोटपौरी और पुष्प अर्क विशेष बाजारों को पूरा करते हैं, जिससे आय के अवसर और विस्तृत होते हैं।

पारिस्थितिकी सेवाएँ

जैव विविधता को बढ़ावा देना

जैव विविधता अनुकूल पारिस्थितिक तंत्र के लिए आवश्यक है, और फूलों की खेती इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फूल मधुमक्खियों, तितलियों और पक्षियों जैसे परागणकों को आकर्षित करते हैं, जो खाद्य फसलों के परागण के लिए महत्वपूर्ण हैं। बेहतर परागण न केवल फसल की पैदावार बढ़ाता है बल्कि पौधों की अनुवांशिक विविधता को भी बढ़ाता है, जिससे वे कीटों और रोगों से अधिक प्रतिरोधी हो जाते हैं। इसके अलावा, फूलों के पौधे लाभकारी कीटों और प्राकृतिक शिकारी के लिए आवास प्रदान करते हैं, जिससे रासायनिक कीट नियंत्रण की आवश्यकता कम हो जाती है और पारिस्थितिक संतुलन को बढ़ावा मिलता है। अक्टूबर महीने में जब बहुत कम फूल खिलते हैं, कुछ फूलों की प्रजातियाँ जैसे कि गुलदाउदी किस्म राजेंद्र गुलदाउदी-6 खिलती हैं और यह मधुमक्खियों के जीवन के लिए मददगार साबित होती हैं।

जर्मप्लाज्म राजेंद्र गुलदाउदी-6 पर मधुमक्खियों का आगमन

कार्बन पृथक्करण

जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करना और कार्बन पृथक्करण को बढ़ाना महत्वपूर्ण है। फूलों की खेती प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करके कार्बन पृथक्करण में योगदान करती है। जब सजावटी पौधों और फूलों की झाड़ियों को कृषि वानिकी प्रणालियों में एकीकृत किया जाता है, तो यह कृषि भूमि की कार्बन भंडारण क्षमता को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, शहरी हरित परियोजनाओं में उपयोग किए जाने वाले फूल शहरी गर्मी के प्रभाव को कम करने में मदद करते हैं, जिससे स्थानीय स्तर पर जलवायु शमन में योगदान मिलता है।

मिट्टी और जल प्रबंधन

सतत कृषि के लिए स्वस्थ मिट्टी और कुशल जल उपयोग मौलिक हैं। फूलों की खेती फसल चक्र और जैविक पदार्थों की वृद्धि के माध्यम से मिट्टी के स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण रूप से सुधार सकती है। उदाहरण के लिए, गेंदे और कैलेंडुला जैसे फूलों का उपयोग अक्सर रोटेशन फसलों के रूप में किया जाता है ताकि मिट्टी में जैविक पदार्थों को समृद्ध किया जा सके और बाद की खाद्य फसलों में कीटों की आबादी को कम किया जा सके।

फूलों की खेती ड्रिप सिंचाई या वर्षा जल संचयन जैसी जल-कुशल तकनीकों का उपयोग करके की जा सकती है, जिससे जल दुर्लभ क्षेत्रों में सतत जल प्रबंधन सुनिश्चित किया जा सके। कुछ संरचनाओं, जैसे ग्रीन रूफ (हरी छत) का विकास पानी के बहाव में मौजूद प्रदूषकों को साफ करने में सहायक हो सकता है। वर्टिकल गार्डन (ऊर्ध्वाधर बागवानी) न केवल अपनी सौंदर्यात्मक विशेषताओं के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि निर्मित पर्यावरण में वायु की गुणवत्ता में सुधार और सतह के तापमान को कम करने में भी प्रभावी हैं।

फूलों की जलवायु अनुकूल खेती एक बहुआयामी दृष्टिकोण प्रदान करती है। पारिस्थितिक और आर्थिक लाभों के अलावा, फूलों की खेती महत्वपूर्ण सामाजिक लाभ भी प्रदान करती है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करती है, विशेष रूप से महिलाओं के लिए, जो अक्सर कटाई और प्रसंस्करण गतिविधियों में भाग लेती हैं। इसके अलावा, फूलों का सौंदर्य मूल्य त्योहारों, समारोहों और सार्वजनिक स्थानों में उनके उपयोग को बढ़ाता है, जिससे सांस्कृतिक और सामाजिक लाभों को बढ़ावा मिलता है। ये सामाजिक-आर्थिक लाभ कृषि समुदायों के समग्र लचीलापन में योगदान करते हैं।

जैव विविधता को बढ़ावा देकर, परागण का समर्थन करके, मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करके और आर्थिक स्थिरता प्रदान करके, फूल जलवायु परिवर्तन के कृषि पर प्रभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। सही नीतियों, निवेश और किसान प्रशिक्षण के साथ, फूलों की खेती कृषि परिदृश्य को बदल सकती है, जिससे यह अधिक टिकाऊ, अनुकूल और लाभदायक बन सके। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के समक्ष, कृषि प्रणालियों में फूलों को एकीकृत करना एक सुंदर और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है।

कृषि वानिकी और शहरी हरियाली

वृक्षों और खाद्य फसलों के साथ फूलों के पौधों को शामिल करने वाली कृषि वानिकी प्रणालियां जलवायु अनुकुलता बनाने में अत्यधिक प्रभावी हैं। कृषि वानिकी प्रणालियों में फूल न केवल अतिरिक्त आय प्रदान करते हैं बल्कि तापमान और आर्द्रता को नियंत्रित करके एक अनुकूल माइक्रोक्लाइमेट भी बनाते हैं। शहरी क्षेत्रों में, फूलों की खेती हरियाली में वृद्धि के प्रयासों में योगदान करती है, यह गर्मी को कम करती है, वायु गुणवत्ता में सुधार करती है। ये लाभ फूलों को सतत शहरी कृषि का एक अभिन्न अंग बनाते हैं। शहरी फ्लोरीकल्चर कट-फूल स्रोतों के डीकार्बोनाइजेशन में योगदान दे सकता है, शहरों में उत्सर्जन को अवशोषित करके प्रदूषण को कम कर सकता है, घरेलू अपशिष्ट से पोषक तत्वों को कंपोस्टिंग के माध्यम से पुनः प्राप्त कर सकता है, अतिरिक्त आय उत्पन्न कर सकता है और रोजगार के अवसर प्रदान करके हरित अर्थव्यवस्था में योगदान दे सकता है। साथ ही, यह एक सुखद शहरी परिदृश्य प्रदान करके निवासियों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार कर सकता है।

बदलते मौसम में लीची की खेती

विनोद कुमार

भारत में लीची एक महत्वपूर्ण फल है, जो मुख्य रूप से बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड जैसे राज्यों में उत्पादित की जाती है। यह फल अपने अनोखे स्वाद और उच्च पोषण मूल्य के कारण न केवल भारत में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भी लोकप्रिय है। बदलते मौसम के कारण लीची की खेती में कई चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं, जिनसे निपटने के लिए किसानों को अनुकूलन के उपाय अपनाने की आवश्यकता है। नवीनतम तकनीकों का उपयोग और किसानों को समय-समय पर प्रशिक्षण प्रदान करने से लीची की खेती को स्थायी और लाभकारी बनाया जा सकता है। इस लेख में बदलते मौसम के कारण लीची की खेती में आ रही चुनौतियों और उनके अनुकूलन के उपायों पर विस्तृत चर्चा की गई है। यदि इन उपायों को सही ढंग से लागू किया जाए, तो लीची की खेती न केवल मौसम की अनिश्चितताओं से सुरक्षित रह सकेगी, बल्कि आने वाले वर्षों में भी अपनी महत्ता बनाए रख सकेगी।

लीची (लीची चाइनेन्सिस), एक उपोष्णकटिबंधीय फल है जिसे उसकी अनूठी मिठास और सुगंध के कारण बहुत पसंद किया जाता है। भारत के कई राज्यों में लीची के व्यावसायिक बागान हैं, जिनमें बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, असोम, छत्तीसगढ़, पंजाब, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और ओडिशा शामिल हैं। विशेष रूप से, बिहार का मुजफ्फरपुर जिला अपनी 'शाही' लीची के लिए प्रसिद्ध है।

प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर -842002, बिहार

लीची की खेती से जुड़े किसानों के लिए यह फसल आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, लेकिन बदलते मौसम के कारण लीची की खेती अब कई चुनौतियों का सामना कर रही है। इसलिए, लीची की टिकाऊ खेती को सुनिश्चित करने के लिए कृषि पद्धतियों को अनुकूलित करने और बदलने की आवश्यकता है। यह लेख भारत के प्रमुख लीची उत्पादक राज्यों के किसानों द्वारा बदलते मौसम की परिस्थितियों के कारण सामना की जा रही समस्याओं का विश्लेषण करता है और इन चुनौतियों से निपटने के लिए व्यापक समाधान प्रस्तुत करता है।

बदले हुए मौसम पैटर्न

मौसम में हो रहे बदलाव लीची की खेती के लिए सबसे बड़ी चुनौती हैं। अनियमित वर्षा, तापमान में उतार-चढ़ाव और चरम मौसम की घटनाओं ने लीची के विकास चक्र को प्रभावित किया है। इससे फसल पर तनाव-संबंधी स्थितियों में वृद्धि हुई है, जिससे पैदावार और फलों की गुणवत्ता में कमी आई है। एक दशक से भी अधिक समय से असामान्य मौसम पैटर्न के कारण लीची का मौसम बदल गया है, जिससे फल के विकसित होने से लेकर पकने तक का समय 10-12 दिन कम हो गया है। वर्ष 2014-2024 के बीच तापमान में हुये बदलावों के विश्लेषण से पता चलता है कि फरवरी और अप्रैल के महीनों में तापमान में वृद्धि हुई है, जबकि मार्च और मई में कमी आई है।

परागण और मधुमक्खियों के भ्रमण पर प्रभाव

लीची बागानों में मधुमक्खियों का भ्रमण, परागण और फल जमाव के लिए आदर्श तापमान आमतौर पर 20°C से 30°C के बीच और सापेक्ष आर्द्रता लगभग 60-70% होती है। बिहार में, लीची के फूलने का मौसम आमतौर पर फरवरी से मार्च तक होता है, जो आदर्श परागण और फल जमाव के लिए आवश्यक मध्यम तापमान के साथ अच्छी तरह मेल खाता है। यह भी आवश्यक है कि इस अवधि के दौरान अन्य जलवायु कारक, जैसे आर्द्रता और हवा, परागण प्रक्रिया के लिए अनुकूल हों।

लीची के फूलने और फल सेटिंग अवधि (फरवरी से अप्रैल 2024) के दौरान मौसम डेटा की समीक्षा से पता चलता है कि फरवरी माह में औसत अधिकतम तापमान 27°C था, जिसमें कई दिन तापमान 30°C से ऊपर रहा। मार्च में औसत अधिकतम तापमान बढ़कर 32°C हो गया, जिसमें अक्सर दिन का तापमान 35°C से ऊपर रहा। अप्रैल में औसत अधिकतम तापमान लगातार 35-38°C के आसपास रहा, और कुछ दिन 40°C को पार कर गया। इसी तरह, फरवरी से अप्रैल माह के दौरान सापेक्ष आर्द्रता 50% से 70% के बीच रही, जिसमें सुबह के समय उच्च आर्द्रता स्तर और दोपहर में कम आर्द्रता के मान देखने को मिले। ये बदलाव इस बात के संकेत हैं कि परागण और मधुमक्खियों की भ्रमण के लिए मौसम अनुकूल नहीं रहा था।

बिहार में लीची फल विकास में 10-12 दिनों की देरी

फलों पर सूर्यप्रकाश का प्रभाव

फलों में फुटाव

मृदा स्वास्थ्य और माइक्रोबायोम (सूक्ष्मजीवों की संख्या) संबंधित समस्यायें

कृषि और पौधों के संदर्भ में, मृदा माइक्रोबायोम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह मिट्टी में मौजूद सूक्ष्मजीव समुदाय को संदर्भित करता है, विशेष रूप से पौधों के जड़ क्षेत्र के आसपास, जिसे राइजोस्फीयर के रूप में जाना जाता है। राइजोस्फीयर एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है क्योंकि यह वह जगह है जहाँ पौधों की जड़ों, मिट्टी और सूक्ष्मजीवों के बीच गहन अंत: क्रिया होती है। माइक्रोबायोम लीची के फल की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं, जिसमें इसका स्वाद, आकार और पोषण सामग्री शामिल है। संतुलित माइक्रोबियल समुदाय वृक्षों का स्वास्थ्य बरकरार रखता है जो बेहतर गुणवत्ता वाले फल पैदा करते हैं।

जलवायु परिवर्तन मिट्टी के माइक्रोबायोम को बाधित कर सकता है। बढ़ते तापमान, परिवर्तित वर्षा के स्वरूप और अवांछित कृषि क्रियाएँ सूक्ष्मजीवों की गतिविधि और समुदाय की संरचना को प्रभावित कर सकते हैं इससे पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है, मृदा जनित रोग बढ़ जाते हैं, और लीची के वृक्षों की तनाव सहनशीलता घट जाती है।

प्रमुख उत्पादक राज्य, बिहार के लीची बागों की मिट्टी का पीएच क्षारीय (7.0-9.5) है। इतने ज्यादा पीएच पर बहुत से पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। खासकर फॉस्फोरस, पौधों को मिलना कम हो जाता है और ज्यादातर सूक्ष्म पोषक तत्व भी अनुपलब्ध हो जाते हैं। सदियों से बिहार के लीची बाग में वृक्षों की जड़ों में माइकोराइजा और अन्य सूक्ष्मजीव की क्रियाएँ इतने पीएच पर भी पोषक तत्वों को उपलब्ध करवाते रहे हैं।

बदलते जलवायु एवं कृषि क्रियाओं ने मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या को कम कर दिया है और बागवानी प्रबंधन से संबंधित समस्याओं को बढ़ा दिया है। अवांछनीय मिट्टी सूक्ष्मजीवों, पोषक तत्वों की कमी और पानी प्रबंधन की समस्यायें अधिक प्रचलित हो गई हैं। जिंक और बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी ने लीची की सेहत और उत्पादकता पर प्रभाव डाला है।

राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र ने वर्ष 2016 में मुजफ्फरपुर बोचहां के ब्लॉक में बड़े पैमाने पर लीची के वृक्षों के सूखने का मामला दर्ज किया। जांच में पाया गया कि मिट्टी में नमी की कमी, खराब जल धारण क्षमता, कार्बनिक पदार्थों की कमी और सूक्ष्मजीवों की अनुपस्थिति मुख्य कारण थे, जिसे असामान्य उच्च तापमान ने और बढ़ा दिया।

फसल प्रबंधन प्रथाएँ

बिहार, जो प्रमुख लीची उत्पादक राज्य है, के ज्यादातर लीची बागान ठेकेदारों द्वारा प्रबंधित होते रहे हैं, न कि सीधे किसानों द्वारा। इस ठेकेदार-संचालित दृष्टिकोण से अक्सर फसल प्रबंधन प्रथाओं पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता, जिससे बागान की देखभाल के लिए उपयुक्त उपायों की कमी होती है। इस कमी के कारण मिट्टी की सेहत, वृक्ष की देखभाल, और फसल की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

फसल सुरक्षा उपाय

प्रभावी फसल की सुरक्षा के लिए सही जानकारी की आवश्यकता होती है, लेकिन कई उत्पादकों को कीट और रोग प्रबंधन के

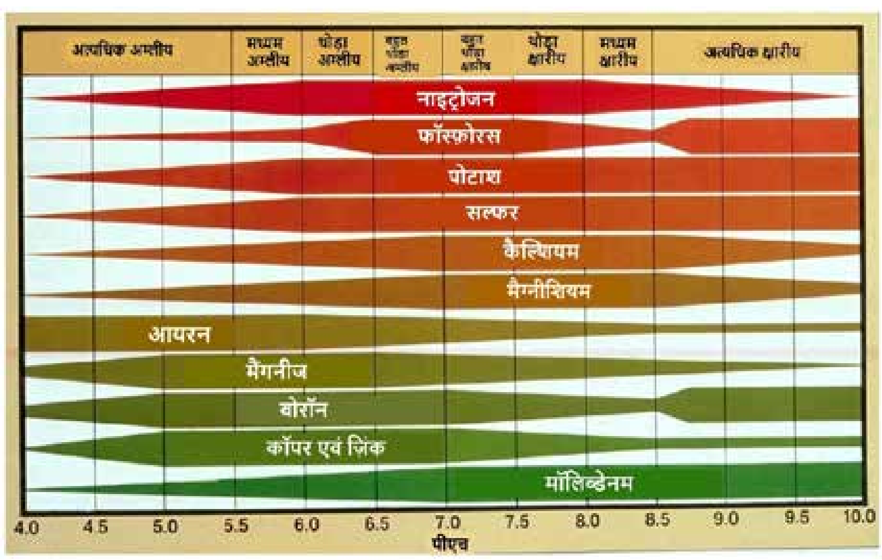

मिट्टी के पीएच मान का पोषक तत्वों की उपलब्धता पर प्रभाव

बारे में सटीक और व्यावहारिक ज्ञान की कमी होती है। अक्सर वे विशेषज्ञों की सलाह के बजाय स्थानीय दवा विक्रेता की सलाह पर निर्भर रहते हैं। सही जानकारी की कमी के कारण सही उपचार नहीं हो पाता और अक्सर कई मामलों में खर्च भी बढ़ जाता है। लीची कीटों और रोगों के प्रकोप के प्रति संवेदनशील होती है।

उत्पादन लागत में वृद्धि

हाल के वर्षों में लीची उत्पादन की लागत में काफी वृद्धि हुई है, जो उर्वरक, कीटनाशक और सिंचाई जैसे उपादानों की बढ़ती लागत के कारण है। एक और कारण सही प्रबंधन की जानकारी न होना भी है जिससे अनावश्यक रासायनिक दवाइयों और तथाकथित टॉनिक मिश्रण का प्रयोग हो रहा है। यह वित्तीय बोझ किसानों के लिए आवश्यक सुधारों में निवेश करना और बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होना चुनौतीपूर्ण बना देता है।

मौसम अनुकूलन प्रस्तावित समाधान

साल भर बाग प्रबंधन

जब बाग ठेकेदार-संचालित होते हैं तो वे बस लीची सीजन में ही, कैसे ज्यादा से ज्यादा फल प्राप्ति हों, वृक्षों के दोहन पर ध्यान देते हैं। इस मौसमी देखभाल दृष्टिकोण में बदलाव की जरूरत है ताकि साल भर मृदा और वृक्ष स्वास्थ्य प्रबंधन पर ध्यान दिया जा सके, जो मौसम पैटर्न के अनुकूलन के लिए भी जरूरी है। मिट्टी की सेहत, पोषक तत्वों की मात्रा, और पेड़ की स्थिति की सतत निगरानी एवं प्रबंधन से उत्पादन में वृद्धि तथा उत्पादकता को बनाए रखने में मदद मिलेगी।

किसान-संचालित बागवानी प्रबंधन

ठेकेदार-संचालित से किसान-संचालित बागवानी प्रबंधन की ओर बदलाव यह सुनिश्चित करेगा कि जो लोग बागान की सफलता में सीधे निवेशित हैं, वे इसकी देखभाल के लिए जिम्मेदार होंगे। यह दृष्टिकोण अधिक विस्तृत ध्यान और अधिक व्यक्तिगत प्रबंधन प्रथाओं को प्रोत्साहित करेगा।

उन्नत छत्रक (कैनोपी) प्रबंधन

प्रभावी छत्रक (कैनोपी) प्रबंधन सूरज की रोशनी को नियंत्रित करने में मदद करता है, सनबर्न (फलों का सूर्य प्रकाश जलन) की घटनाओं को कम करता है, और समग्र फल की गुणवत्ता को सुधारता है। छंटाई और कैनोपी समायोजन जैसी तकनीकों से प्रकाश का प्रवेश और वायु संचलन को अनुकूलित

लीची के वृक्ष का एक आदर्श छत्रक

किया जा सकता है। इसके अलावा उचित छत्रक के लाभों में रोग में कमी, कीटनाशकों का बेहतर उपयोग और संपर्क, फलों की आसान तुड़ाई शामिल हैं।

बागानों का पुनरोद्धार

पुराने बागानों की चयनात्मक छँटाई और मिट्टी के सुधार जैसी प्रथाओं के माध्यम से पुनरोद्धारित करना उनकी उत्पादकता को बहाल कर सकता है। पुनरोद्धार से फल की गुणवत्ता में सुधार और बागान की दीर्घकालिकता बढ़ाई जा सकती है।

उचित पोषक तत्व प्रबंधन

प्रमुख पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश) के साथ-साथ नियमित रूप से सूक्ष्म पोषक तत्वों की आपूर्ति, जिसमें जिंक और बोरॉन शामिल हैं, का प्रयोग करना भी आवश्यक है। खेत में गोबर और जैविक खाद के उपयोग से मिट्टी की सेहत में सुधार होगा और लीची वृक्षों के लिए संतुलित पोषक तत्वों की आपूर्ति सुनिश्चित होगी।

कार्बनिक/जैविक खाद की उपलब्धता बढ़ाना

वृक्षों को आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करने और मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए जैविक स्रोतों का अधिकतम उपयोग करना आवश्यक है। शहरी, पशु और कृषि औद्योगिक अपशिष्ट का पुनर्चक्रण करके खाद या वर्मीकम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है। एकान्तर वर्षो में दलहनी फसल की हरी खाद का उपयोग और जैविक नियंत्रण को प्राथमिकता देना, लाभकारी सूक्ष्मजीवों की आबादी को बढ़ाने में सहायक है।

सूक्ष्मजीवी कंसोर्टिया का प्रयोग और 'इन-सीटू माइकोराइजेशन'

माइकोराइजा, ट्राइकोडर्मा, और एजोटोबैक्टर जैसे सूक्ष्मजीवी कंसोर्टिया (मिश्रण) का उपयोग मिट्टी की सेहत और पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है। एजोटोबैक्टर और ट्राईकोडर्मा, ग्लोमस माइकोराइजा की वृद्धि में मदद करते हैं और जड़ विकास को भी गति प्रदान करते हैं। मंडुआ (फिंगर मिलेट) जैसे मेजबान पौधों का उपयोग करके लीची बागों में 'इन-सीटू माइकोराइजेशन' किया जा सकता है। माइकोराइजल कवक को पौधों के सीधे उनके प्राकृतिक विकास के वातावरण में प्रयोग करना, जैसे मिट्टी या सब्सट्रेट में सीधे प्रयोग करना 'इन-सीटू माइकोराइजेशन' कहलाता है। माइकोराइजल कवक पौधे की जड़ों के साथ एक सहजीवी सम्बन्ध बनाते हैं, जिससे कवक और पौधे दोनों को लाभ होता है। यह तकनीक वास्तव में सामान्य

वर्मीकम्पोस्ट

उभरते कीट एवं रोग की समस्यायें

लीची की खेती में कीटों और रोगों की समस्या बढ़ती जा रही है, जिससे उत्पादन और गुणवत्ता पर असर पड़ रहा है। पारंपरिक रूप से किसान 'फल बेधक' कीट के प्रबंधन के लिए रासायनिक दवाइयों का इस्तेमाल करते थे। हाल के वर्षों में नए कीटों और रोगों की समस्याएं उभरकर सामने आई हैं। इनमें 'स्टिंक बग' और 'फ्लावर वेबर' प्रमुख हैं, साथ ही 'मंजर और फल झुलसा' रोग भी लीची की खेती के लिए गंभीर चुनौती बन गया है। 'स्टिंक बग' का आक्रमण वर्ष 2021 से बिहार के लीची बागानों में तेजी से बढ़ा है। यह कीट पौधों के कोमल हिस्सों जैसे कि कलियाँ, पत्तियाँ और पुष्पक्रम पर आक्रमण करता है। कीट के अत्यधिक रस चूसने से कलियाँ और अंकुर सूख जाते हैं, और फल काले पड़ जाते हैं। इसके कारण फूल और फल गिर जाते हैं, जिससे उत्पादन में कमी आती है। 'फ्लावर वेबर' कीट भी लीची के लिए एक नई चुनौती बन गया है, यह कीट पुष्पक्रम की कलियों और फूलों को खाकर उन्हें रेशमी जाले में लपेटता है, जिससे पुष्पक्रम झुलस जाते हैं और फलों में छेद हो जाते हैं। कीट के प्रकोप से पूरा वृक्ष झुलसा हुआ दिखाई देता है, जिससे उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। 'मंजर और फल झुलसा' रोग भी लीची की खेती में आर्थिक नुकसान का कारण है। इस रोग के कारण मंजर झुलस जाते हैं, जिससे फल नहीं लगते और झुलसे हुए प्रतीत होते हैं। अनुकूल मौसम के बावजूद, फल झुलस सकते हैं और तुड़ाई के बाद भी सड़ सकते हैं। इन नए कीटों और रोगों की वजह से किसानों को रासायनिक दवाओं पर अधिक खर्च करना पड़ रहा है, जिससे लीची की उत्पादन लागत में वृद्धि हो रही है।

'स्टिंक बग' और 'फ्लावर वेबर' कीट एवं 'मंजर झुलसा' रोग (बाएँ से दायें क्रमशः)

रूप से माइक्रोबायोम को बेहतर बनाने और लीची तथा अन्य फलों की फसल के बागों सहित बाग पारिस्थितिकी तंत्र में माइकोराइजा आबादी को बढ़ाने में मददगार है।

मल्चिंग और सॉड कल्चर

मल्च या संरक्षण कृषि पद्धतियों को लागू करने से मिट्टी की नमी बनाए रखने, कटाव को कम करने और मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या को सुधारने में मदद मिलती है। ये प्रथाएँ मिट्टी की बाधा को भी कम करती हैं, जिससे मिट्टी की सेहत पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। मिट्टी को ठंडा रखने के लिए वृक्ष के आधार के चारों ओर जैविक गीली घास की परत को लगाकर बगीचों में कार्बनिक पदार्थ डालने से, सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ती है। साथ ही बगीचे में सॉड कल्चर रखें अर्थात बगीचे के फर्श को ढँकने के लिए घास को पनपने देना उपयोगी है। बगीचे के फर्श पर लीची वृक्षों से जो पत्तियां गिरती हैं, उसे संरक्षित रखने की कोशिश करें।

उन्नत सिंचाई विधियाँ

प्रभावी सिंचाई प्रणालियाँ बदलते वर्षा स्वरूप के प्रति अनुकूल होने और उपयुक्त विकास की परिस्थितियों को बनाए रखने के

लीची के पत्तों की प्राकृतिक मल्च (पलवार)

लिए आवश्यक हैं। उन्नत सिंचाई विधियों, जैसे कि बगीचे में 'मध्य कैनोपी स्प्रिंकलर' का उपयोग करें, जिससे बागों में माइक्रोक्लाइमेट अनुकूलित होता है, तापमान कम होता है और आर्द्रता बनी रहती है। इससे सनबर्न और फल फुटाव की समस्या से राहत मिलती है। वैकल्पिक रूप से तत्काल राहत के लिए कई किसान दोपहर बाद में वृक्ष छत्रक पर पानी का छिड़काव भी करते हैं जो समस्या से निदान में उपयोगी पाया गया है।

रसायनों का उपयोग

केवल सिफारिश किए गए उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग सुनिश्चित करना, और उन्हें आसानी से उपलब्ध करवाना, फसल प्रबंधन के लिए आवश्यक है। रासायनिक अनुप्रयोगों के लिए दिशा-निर्देशों का पालन करने से मिट्टी और पौधों की सेहत पर नकारात्मक प्रभावों से बचा जा सकता है।

प्रशिक्षण और शिक्षा

किसान ही नहीं बल्कि, ठेकेदारों और दुकानदारों/व्यापारियों के लिए प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है ताकि वे आधुनिक कृषि प्रथाओं और नवीनतम प्रौद्योगिकियों के बारे में अच्छी तरह से सूचित हों। फसल प्रबंधन, पौधों की सुरक्षा और रासायनिक उपयोग

लीची के बाग का इन-सीटू माइकोराइजेशन: मिट्टी में सड़ी गोबर की खाद के साथ माइकोराइजा कल्चर का प्रयोग तथा मेजबान पौधे के रूप में मंडुआ/रागी की फसल

केवल प्रमाणित जैवनाशी रसायनों का प्रयोग

देखा गया है कि अक्सर किसान दवा विक्रेता के परामर्श द्वारा संचालित होते हैं और दवाई विक्रेता ज्यादा लाभ मार्जिन वाले रसायनों की अनुशंसा करते हैं। प्रतिष्ठित ब्रांडेड और अनब्रांडेड कीटनाशकों के बीच चयन लीची किसानों के लिए कीट प्रबंधन की प्रभावशीलता और खेती की लागत पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। ब्रांडेड कीटनाशक, हालांकि महंगे होते हैं, आमतौर पर गुणवत्ता नियंत्रण और प्रभावशीलता के कारण अधिक विश्वसनीय होते हैं। इससे बेहतर कीट नियंत्रण, कम छिड़काव की जरूरत, और संभावित रूप से उच्च उपज प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार, उच्च प्रारंभिक लागत के बावजूद दीर्घकालिक बचत हो सकती है। इसके विपरीत, अनब्रांडेड कीटनाशक सस्ते होते हैं लेकिन इनकी गुणवत्ता और प्रभावशीलता में असंगतता हो सकती है, जिससे अधिक बार उपयोग और अतिरिक्त लागत आ सकती हैं। इस असंगतता के कारण कीट प्रबंधन प्रयासों की प्रभावशीलता कम हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप कम उपज और खर्च में वृद्धि हो सकती है। अतः लीची किसानों द्वारा प्रमाणित कीटनाशकों के प्रयोग में निवेश दीर्घकालिक रूप से अधिक लागत-कुशल हो सकता है, भले ही प्रारंभिक लागत अधिक हो, क्योंकि ये अधिक विश्वसनीय और बेहतर प्रभावकारी होते हैं।

लीची में ट्राइकोडर्मा की प्रयोग विधि

पर व्यापक शिक्षा प्रदान करने से बेहतर परिणाम प्राप्त होंगे।

मास मीडिया की भूमिका

मास मीडिया किसानों को नई तकनीक और लीची की बेहतर कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र और डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से, मास मीडिया लीची की खेती में नवीनतम जानकारी जैसे कीट नियंत्रण, उर्वरक तकनीक और फसल तुड़ाई प्रथाएँ प्रदान कर सकता है। शैक्षिक कार्यक्रमों और विशेषज्ञ साक्षात्कारों के जरिए, किसानों को उन्नत तकनीकें सुलभ हो जाती हैं। सोशल मीडिया और ऑनलाइन फोरम भी एक इंटरैक्टिव प्लेटफॉर्म प्रदान करते हैं जहां किसान विशेषज्ञों से सलाह और जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मास मीडिया की व्यापक पहुंच के कारण, किसान बेहतर निर्णय ले सकते हैं, जिससे लीची की खेती में उत्पादकता और स्थिरता में सुधार होगा।

लीची उत्पादकों को व्यावहारिक सलाह और समुचित समर्थन की जरूरत है ताकि वे इन चुनौतियों का सामना कर सकें और अपने बागानों को दीर्घकालिक सफलता की ओर अग्रसर कर सकें। इस संदर्भ में, राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र के प्रयासों के साथ-साथ मास मीडिया की सक्रिय भूमिका महत्वपूर्ण है। मिट्टी और वृक्ष की सेहत का व्यापक प्रबंधन और नई तकनीकों को अपनाना ही लीची की खेती की सफलता की कुंजी है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि किसानों तक विस्तृत और व्यावहारिक सलाह पहुंचायी जाए, जिससे वे बदलते मौसम के साथ तालमेल बिठाकर अपनी फसल को संरक्षित और समृद्ध कर सकें।

लीची के बाग में संरक्षण कृषि पद्धति

जम्मू-कश्मीर में मशरूम का लाभकारी उत्पादन

सचिन गुप्ता[1], **हेमा त्रिपाठी**[2], **मोनी गुप्ता**[3] और **मेघा अबरोल**[4]

भारत, एक कृषि प्रधान देश होते हुए भी आज आधुनिक कृषि की दिशा में परिवर्तनशील है। जलवायु परिवर्तन, सीमित कृषि भूमि, पारंपरिक फसलों की घटती लाभप्रदता और बढ़ती जनसंख्या के दबाव ने किसानों को वैकल्पिक कृषि प्रणालियों की ओर मोड़ दिया है। मशरूम अथवा खुम्ब उत्पादन इसी दिशा में एक अभिनव एवं लाभकारी विकल्प बनकर उभरा है। यह न केवल न्यूनतम संसाधनों के साथ अधिक उत्पादन देता है, बल्कि पोषण और आय के नए द्वार भी खोलता है। मशरूम उत्पादन की लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है, क्योंकि इसमें कृषि अवशेषों या अपशिष्टों पर उगने की अद्वितीय क्षमता है। इसे वर्षभर किसी भी मौसम में उगाया जा सकता है और इसकी लागत एवं श्रम अपेक्षाकृत कम होते हैं। कम लागत में अधिक लाभ देने वाला यह व्यवसाय कम जगह और कम समय में अधिक उत्पादन की क्षमता रखता है। साथ ही, मशरूम, पोषक तत्वों से भरपूर होता है। पिछले कुछ दशकों में इसकी मांग और उत्पादन में कई गुना वृद्धि दर्ज की गई है, जिससे यह किसानों के लिए एक लाभदायक विकल्प बन गया है।

जनकल्याण और स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के बीच मशरूम एक पौष्टिक, टिकाऊ और पर्यावरण-संवेदनशील खाद्य विकल्प के रूप में उभरकर सामने आया है। इसमें उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो इसे खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से एक आदर्श विकल्प बनाता है। विशेष रूप से ऐसे क्षेत्रों में, जहां एक बड़ी जनसंख्या प्रोटीन की कमी से जूझ रही है, मशरूम एक सस्ता, सुलभ और प्रभावी समाधान प्रदान करता है। यह पशु-आधारित प्रोटीन का एक बेहतर विकल्प है, खासकर शाकाहारी लोगों के लिए।

[1]प्रोफेसर एवं इंचार्ज, मशरूम यूनिट, [2]सह निदेशक, प्रसार, [3]विभागाध्यक्ष, जीव रसायन विभाग; [4]शोध छात्रा, पादप व्याधि विज्ञान विभाग, शेर-ए-कश्मीर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू

पिछले कुछ वर्षों में मशरूम के औषधीय गुणों को लेकर जनसामान्य में जागरूकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इसकी कई प्रजातियों में कैंसर-रोधी, एंटीऑक्सीडेंट, एंटीवायरल, एंटीफंगल, लिपिड-घटाने वाले तथा मधुमेह-नियंत्रक गुण पाए जाते हैं। ये विशेषताएँ मशरूम को एक स्वास्थ्यवर्धक आहार के रूप में महत्वपूर्ण बनाती हैं।

हालांकि जैविक रूप से यह एक कवक है, परंतु आर्थिक दृष्टिकोण से मशरूम एक अत्यंत लाभकारी बागवानी नकदी फसल बन चुका है। इसका उत्पादन मुख्यत: नियंत्रित वातावरण वाले बंद कमरों में किया जाता है, जिससे यह मौसमी उतार-चढ़ाव से प्रभावित नहीं होता। अन्य बागवानी फसलों की तुलना में यह कम समय और स्थान में अधिक उत्पादन और मुनाफा देने में सक्षम है। इससे यह किसानों के लिए एक आकर्षक विकल्प बन गया है।

मशरूम को (वनस्पति मांस) भी कहा जाता है, जो पोषण विज्ञान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन, फाइबर, विटामिन बी कॉम्प्लेक्स, विटामिन डी, पोटेशियम पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, मशरूम में पाए जाने वाले जैव सक्रिय यौगिक जैसे बीटा-ग्लूकन, एर्गोथायोनीन, पॉलीसेकेराइड्स और टरपीनॉयड्स विभिन्न रोगों जैसे कैंसर, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग और संक्रमणों के विरुद्ध शरीर की रक्षा प्रणाली को सशक्त करते हैं।

सारणी: विभिन्न मशरूम का पोषक मूल्य (शुष्क वजन आधार ग्रा0/100 ग्रा0)						
मशरूम	**कार्बोहाइड्रेट**	**रेशा**	**प्रोटीन**	**वसा**	**राख**	**ऊर्जा (कैलोरी)**
बटन	46.17	20.90	33.48	3.10	5.70	499
ढींगरी	63.40	48.60	19.23	2.70	6.32	412
शिटाके	47.60	28.80	32.93	3.73	5.20	387
पुआल	54.80	5.50	37.50	2.60	1.10	305
दूधिया	64.26	3.40	17.69	4.10	7.43	39
इनोकी	73.10	3.70	17.60	1.90	7.40	378
कनचपटा	82.80	19.80	4.20	8.30	4.70	351

मशरूम को उपयोग के आधार पर मुख्यत: चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है: खाद्य मशरूम, औषधीय मशरूम, विषैले मशरूम एवं अन्य उपयोगी मशरूम। इनमें खाद्य मशरूम की खेती और खपत सबसे अधिक होती है। प्रमुख खाद्य मशरूमों में शिटाके, ढींगरी, बटन, इनोकी और पुआल मशरूम शामिल हैं। ये न केवल स्वादिष्ट और पौष्टिक हैं, बल्कि इनमें औषधीय गुणों की भी भरपूर उपस्थिति होती है। यदि भारत में प्रमुख व्यावसायिक मशरूम किस्मों की बात करें तो इसमें बटन मशरूम (एगरिकस बिस्पोरस) जिसका भारत में कुल मशरूम का 70% से अधिक उत्पादन होता है, को मुख्यत: सर्दियों में उगाया जाता है। पुआल मशरूम (वोल्वेरीला वोलवेसिया) गर्म तथा नम क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है। उच्च तापमान सहन करने की क्षमता रखने वाली दूधिया मशरूम (कैलोसाइब इंडिका) दक्षिण भारत में तेजी से लोकप्रिय हो रही है। शिटाके मशरूम (लेंटिनुला एडोड्स) अपने औषधीय गुणों के लिए प्रसिद्ध है तथा इसे काष्ठीय माध्यम पर उगाया जाता है। इनोकी और हरासियम मशरूम को उगाने की विधियां प्रायोगिक रूप से विश्वविद्यालयों और अनुसंधान केंद्रों में विकसित की जा रही हैं।

वैश्विक परिदृश्य: मशरूम उत्पादन की स्थिति

वर्तमान में वैश्विक स्तर पर मशरूम का बाजार 65.3 बिलियन डॉलर एवं मशरूम उत्पादन 50 मिलियन टन प्रति वर्ष है तथा इसमें प्रति वर्ष 8 से 10% की दर से निरंतर वृद्धि हो रही है। भारत में मशरूम की खेती का आरंभ 1960 के दशक में हिमाचल प्रदेश में सोलन तथा जम्मू-कश्मीर में लाल मंडी, श्रीनगर से हुआ था। वर्ष 1983 में राष्ट्रीय मशरूम शोध एवं प्रशिक्षण केंद्र जिसे आज मशरूम अनुसंधान निदेशालय के नाम से जाना जाता है, की स्थापना के उपरांत मशरूम उत्पादन पर व्यापक शोध का आरंभ हुआ। यह मशरूम पर हो रहे राष्ट्रीय शोध का ही प्रतिफल है कि मशरूम उत्पादन प्रतिवर्ष 12 फीसदी की दर से बढ़ रहा है तथा वर्ष 2023 में यह भारत में 3.5 लाख टन था । हालांकि यह चीन की तुलना में नगण्य प्रतीत होता है, लेकिन हाल के वर्षों में भारत के विभिन्न राज्यों- हरियाणा, पंजाब, उत्तराखंड, हिमाचल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और झारखंड में इसकी खेती ने गति पकड़ी है।

कृषि अपशिष्ट और मशरूम उत्पादन की संभावनाएँ

मशरूम कवक में कृषि अवशेषों के प्रमुख चक्रण द्वारा प्रोटीन युक्त आहार बनाने की संभावना निहित है। भारत एक कृषि प्रधान देश होने के कारण प्रतिवर्ष लगभग 700 मिलियन टन कृषि अपशिष्ट उत्पन्न करता है, जैसे गेहूं का भूसा, धान का पुआल, गन्ने की खोई आदि। यह अपशिष्ट कार्बन से भरपूर होता है और मशरूम की खेती के लिए एक आदर्श माध्यम है। एक अनुमान के अनुसार यदि अपशिष्ट का केवल 2% भी मशरूम उत्पादन के लिए प्रयोग में लाया जाए तो भारत, विश्व का सबसे बड़ा मशरूम उत्पादक बन सकता है।

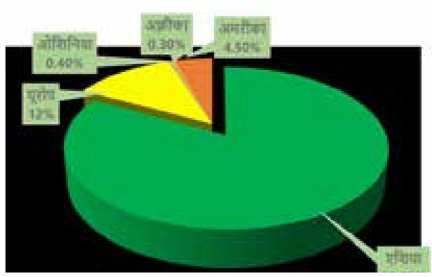

महाद्वीपवार कुल विश्व मशरूम उत्पादन

यदि हम प्रदेश के स्तर पर देखें तो बिहार, ओडिशा तथा महाराष्ट्र में राष्ट्रीय उत्पादन का क्रमश: 12, 11 तथा 10 प्रतिशत उत्पादन होता है। यद्यपि भारत में मशरूम उत्पादन की शुरुआत जम्मू कश्मीर से ही हुई थी परंतु कुछ अवांछित परिस्थितियों के कारण इस केंद्र शासित प्रदेश में भारत के अन्य राज्यों की तरह मशरूम उत्पादन प्रगति नहीं कर पाया। वर्ष 2024 में इस केंद्र शासित प्रदेश में 2,829 टन मशरूम का उत्पादन हुआ जो कि उत्पादन हेतु अनुकूल वातावरण होने के बावजूद अपेक्षा से बहुत कम है।

जम्मू-कश्मीर की जलवायु, विशेषकर कश्मीर घाटी और जम्मू के ऊँचाई वाले क्षेत्र, विभिन्न प्रकार के मशरूम उत्पादन के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं। कृषि भूमि का आकार छोटा होने के कारण यह कम स्थान में अधिक उत्पादन वाली गतिविधियों के लिए आदर्श क्षेत्र बनता है।

अत: सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत वर्ष भर मशरूम को भारत सरकार की "एक जिला: एक उत्पाद"ओडीओपी योजना के अंतर्गत जिला सांबा (जम्मू और कश्मीर) को मशरूम उत्पादन के लिए चुना गया है। वहाँ के 503 उत्पादक लगभग 696 टन मशरूम का उत्पादन करते हैं, जिससे

वैश्विक मशरूम उत्पादन में विभिन्न मशरूम की भागीदारी

एशिया और भारत का मशरूम उत्पादन

वैश्विक स्तर पर मशरूम उत्पादन में एशिया की भागीदारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। विश्व के कुल मशरूम उत्पादन में एशिया की भागीदारी लगभग 96 प्रतिशत (48.9 मिलियन टन) है। यह सफलता आधुनिक तकनीकों, मशीनीकरण, गुणवत्ता युक्त स्पॉन (मशरूम बीज), उचित घरेलू लागत तथा विभिन्न सरकारी प्रोत्साहनों के कारण संभव हो पाई है। एशियाई देशों में चीन अग्रणी भूमिका निभाते हुए, विश्व में सबसे अधिक लगभग 47 मिलियन टन मशरूम का उत्पादन करता है। चीन में लगभग 60 प्रकार की मशरूम प्रजातियों का व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन किया जाता है। इसके विपरीत, भारत में मुख्यतः पाँच प्रकार की व्यावसायिक मशरूम किस्में उगाई जाती हैं, जिनमें बटन मशरूम, दूधिया (मिल्की), ढींगरी, शिटाके और पुआल मशरूम प्रमुख हैं। भारत में बटन मशरूम का योगदान राष्ट्रीय मशरूम उत्पादन में सर्वाधिक है, जो कुल उत्पादन का लगभग 70% है।

यह क्षेत्र केंद्र शासित प्रदेश का एक मशरूम हब बनता जा रहा है तथा ग्रामीण युवाओं में रोजगार के साधन के रूप में मशरूम उत्पादन को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

संस्थागत प्रयास में मशरूम उत्पादन को वैज्ञानिक एवं संरचित ढाँचा देने के लिए केंद्र शासित प्रदेश में चल रहे समग्र कृषि विकास कार्यक्रम (एचएडीपी) के अंतर्गत मशरूम उत्पादन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है तथा "मशरूम की वर्षभर खेती को प्रोत्साहन" विषय में एक परियोजना को इस कार्यक्रम में अनुमोदित किया गया है। इस परियोजना के सफल कार्यान्वयन को देखते हुए वर्ष 2030 तक जम्मू कश्मीर में मशरूम उत्पादन को बढ़ाकर 6775 टन तक पहुंचाने, आय सृजन में वृद्धि एवं निर्यात में योगदान रखा गया है। इस परियोजना के अंतर्गत मशरूम की उच्च गुणवत्ता एवं अधिक पैदावार देने वाली प्रजातियों एवं औषधीय मशरूम की खेती को बढ़ावा देना, मशरूम का वर्षभर उत्पादन, मशरूम विपणन हेतु सुविधाएं उपलब्ध करवाना, किसानों को मशरूम उत्पादन एवं फसलोत्तर प्रसंस्करण के लिए प्रशिक्षित एवं प्रोत्साहित करना शामिल है। इस परियोजना के अंतर्गत मशरूम उत्पान को अगले 5 वर्ष में जो सुविधाएं एवं आधारभूत संरचनाएं उपलब्ध करवाई जाएंगी उनमें प्रमुख प्रस्तावित ढाँचे में 26 पाश्चुरीकरण इकाइयाँ शामिल हैं जो जैव अपशिष्ट को कम्पोस्ट माध्यम में बदलने के लिए आवश्यक हैं।

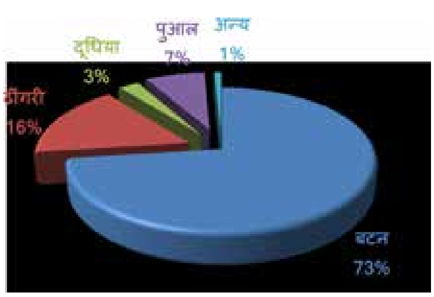

विभिन्न राज्यों में मशरूम की खेती

वर्षभर उत्पादन हेतु 70 पर्यावरण नियंत्रित उत्पादन कक्ष, स्थानीय स्तर पर 10 मशरूम स्पॉन प्रयोगशालाएँ, डेढ़ लाख पाश्चुरीकरण कंपोस्ट बैगों का आवंटन, ग्राम-स्तरीय उद्यमिता के विकास हेतु 300 मशरूम शेड, 4 मशरूम कैनिंग इकाइयों की स्थापना, मशरूम स्वयं सहायता समूहों का गठन (एसएचजी), महिला उद्यमिता को बढ़ावा तथा मूल्य संवर्धन और विपणन हेतु 4 प्रसंस्करण इकाइयाँ शामिल की गई हैं।

इसके अतिरिक्त इस परियोजना के अंतर्गत 6600 किसानों को मशरूम उत्पादन में उत्तम विकास एवं प्रशिक्षण हेतु दक्ष किसान पोर्टल पर मशरूम उत्पादन एवं स्पॉन उत्पादन पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम उपलब्ध करवाया गया है। इससे घर बैठे किसान तथा युवा, मशरूम एवं स्पॉन उत्पादन के विभिन्न पहलुओं पर वीडियो तथा लिखित पाठ्य सामग्री एवं प्रश्नपत्र उत्तीर्ण कर सफलता का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर सकते हैं। इस परियोजना के 2 वर्ष के कार्यानुभव में ही मशरूम उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि देखने में मिल रही है।

शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं

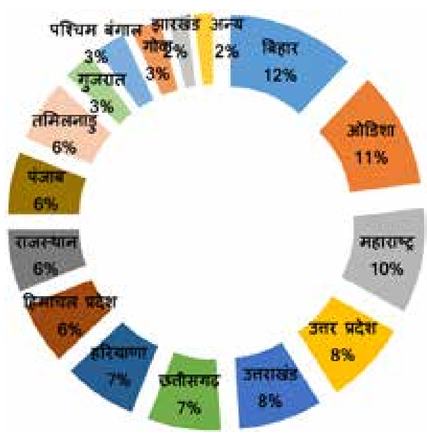

राष्ट्रीय मशरूम उत्पादन में विभिन्न राज्यों का योगदान

बटन मशरूम

प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू भी समग्र कृषि विकास कार्यक्रम परियोजना में शैक्षणिक एवं अनुसंधान हेतु प्रतिभागी है। इस विश्वविद्यालय की मशरूम इकाई में विभिन्न औषधीय मशरूम जैसे शिटाके, इनोकी, हरासियम, ऑरिक्यूलरीए आदि पर शोध किया जा रहा है। किसानों को कम्पोस्ट बैग, उच्च श्रेणी का स्पॉन उपलब्ध करवा के तथा विभिन्न शिक्षण कार्यक्रमों द्वारा किसानों तथा युवाओं को मशरूम की खेती में दक्ष किया जा रहा है। इस इकाई ने जम्मू संभाग में मशरूम की वर्षभर खेती का कैलेंडर विकसित किया है तथा वर्ष भर उगने वाली मशरूम की उत्पादन प्रणाली किसानों को सिखाई जाती है। यहाँ विकसित मुख्य नवाचार में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (ऑनलाइन एवं ऑफलाइन), 'मशरूम उत्पादन कैलेंडर', वर्ष भर की खेती के लिए मार्गदर्शन एवं अनुसंधान आधारित किस्मों: जैसे शिटाके, इनोकी, हरासियम की उन्नत खेती है। प्रायः मशरूम को गेहूं के भूसे पर उगाया जाता है परंतु विश्वविद्यालय की मशरूम इकाई गेहूं के भूसे के अतिरिक्त कृषि अवशेषों पर विविध प्रकार की मशरूम उत्पादन की तकनीकों को विकसित करने में प्रयासरत है।

इस विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थानों में हो रहे मशरूम शोध को देखते हुए मशरूम उत्पादन का भविष्य सुनहरा प्रतीत होता है। ऐसी आशा की जा सकती है कि आने वाले समय में किसान मशरूम उत्पादन के लिए प्रेरित होंगे तथा विविध प्रकार की मशरूम का उत्पादन कर भारत को मशरूम उत्पादन में शीर्ष पर पहुंचाएंगे।

जम्मू-कश्मीर में मशरूम उत्पादन को कई बाधाओं एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सबसे बड़ी चुनौती जागरूकता और

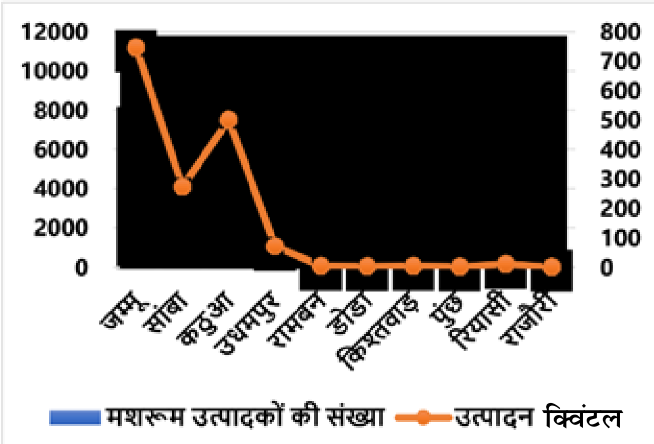

जम्मू संभाग में मशरूम उत्पादन

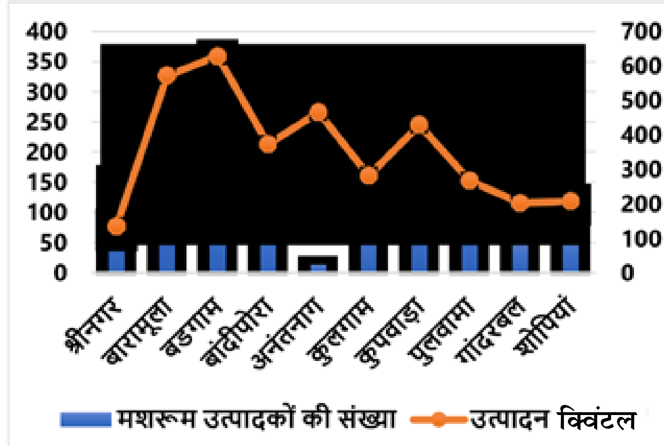

कश्मीर संभाग में मशरूम उत्पादन

प्रशिक्षण की कमी है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां किसान पारंपरिक खेती तक सीमित हैं और मशरूम को व्यावसायिक रूप से अपनाने में हिचकिचाते हैं। स्पॉन (बीज) की अस्थिर आपूर्ति, सीमित उत्पादन केंद्रों और गुणवत्तापूर्ण सामग्री के अभाव के कारण भी उत्पादन प्रभावित होता है। इसके अलावा, विपणन और प्रसंस्करण ढांचे की कमी जैसे डिब्बाबंदी इकाई, ड्रायर एवं प्रसंस्करण इकाई के अभाव में किसान समय पर उचित मूल्य प्राप्त नहीं कर पाते। साथ ही, मशरूम उत्पादन के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे में निवेश करने की क्षमता छोटे किसानों में सीमित है और ऋण या सब्सिडी प्राप्त करने की प्रक्रियाएं जटिल हैं।

चुनौतियों का समाधान

मशरूम उत्पादन में चुनौतियों से निपटने के लिए व्यापक उपायों की आवश्यकता है। सबसे पहले, प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन ब्लॉक स्तर पर किया जाना चाहिए ताकि किसान आधुनिक खेती के लाभ समझ सकें। स्पॉन उत्पादन के लिए स्थानीय स्तर पर स्पॉन यूनिट्स की स्थापना होनी चाहिए और निजी क्षेत्र को इसमें भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। विपणन के लिए किसानों को संगठित कर एफपीओ बनाए जा सकते हैं और डिब्बाबंदी इकाई एवं ड्रायर्स जैसी सुविधाओं को सरकारी सहायता से स्थापित किया जा सकता है। छोटे किसानों को आसान शर्तों पर ऋण और सब्सिडी देने की प्रक्रिया सरल और पारदर्शी बनाई जानी चाहिए, ताकि वह आवश्यक बुनियादी ढांचे का विकास कर सकें और मशरूम उत्पादन को एक सफल उद्यम में बदल सकें।

मशरूम खेती से आत्मनिर्भरता की ओर कदम

जम्मू संभाग के युवाओं ने मशरूम उत्पादन को एक उद्योग एवं रोजगार के रूप में अपनाया है। निम्न प्रेरणादायक सफलता की कहानियाँ अवश्य ही हमारे युवाओं में मशरूम उत्पादन एवं इससे जुड़े व्यवसायों के प्रति रुचि जागृत होगी करेंगी।

मशरूम उत्पादन में नवाचार का उदाहरण

जम्मू-कश्मीर के सांबा जिले के कैथल गांव के निवासी 30 वर्षीय श्री पुष्पेंद्र सिंह ने वर्ष 2010 में मात्र 1000 बैग से मशरूम उत्पादन केंद्र स्थापित किया। प्रारंभ में उन्होंने सरकार द्वारा वितरित शेड के माध्यम से इस कार्य की नींव रखी। कठिन परिश्रम और समर्पण के बल पर उन्होंने एक अत्याधुनिक वातावरण नियंत्रित उत्पादन केंद्र स्थापित किया, जहाँ अब वह वर्ष भर मशरूम की खेती करते हैं। श्री पुष्पेंद्र सिंह न केवल स्वयं मशरूम उत्पादन करते हैं, बल्कि अपने और आसपास के गांवों के बेरोजगार युवाओं को भी प्रशिक्षित कर उन्हें कंपोस्ट बैग उपलब्ध करवाते हैं, जिससे वे भी मशरूम उत्पादन से जुड़कर आत्मनिर्भर बन सकें। इसके साथ ही श्री पुष्पेंद्र सिंह, फूलों की खेती, डेयरी व्यवसाय और रबी-खरीफ की फसलों का भी उत्पादन करते हैं, जिससे उनकी आय के कई स्रोत बन गए हैं।

संघर्ष से सफलता तक

मशरूम की खेती को किस प्रकार हम परंपरागत खेती के साथ करते हुए लाभप्रद बना सकते हैं, उसका उदाहरण जम्मू कश्मीर के जिला कठुआ के एक छोटे से गांव खरोट के निवासी श्री अरुण शर्मा बने हैं। जीवन की अत्यंत कठिन परिस्थितियों से जूझते हुए भी युवा अरुण ने अपने कठिन परिश्रम एवं लगन से मशरूम की खेती को वर्ष 2011 में आरंभ किया।

इनोकी मशरूम

मशरूम उत्पादन से पहले उन्होंने शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू से विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रथम वर्ष में ही 70,000 रुपये का लाभ मिलने के बाद उन्होंने इस क्षेत्र को अपना भविष्य बना लिया। आज श्री अरुण 10 वातानुकूलित कमरों में लगभग 30 टन मशरूम एवं 500 टन कंपोस्ट का उत्पादन करते हैं। उनकी वार्षिक आय 8 लाख रुपये से अधिक है। वह अब 250 से अधिक किसानों को कंपोस्ट और स्पॉन उपलब्ध करवाने के साथ-साथ परामर्श एवं प्रशिक्षण भी प्रदान करते हैं। श्री अरुण शर्मा को राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर कई उन्नत मशरूम उत्पादक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। श्री अरुण शर्मा का मानना है कि यदि युवा मशरूम उत्पादन को एक उद्यम के रूप में अपनाएं तो वह स्वरोजगार द्वारा अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।

अमरूद में अंतरजाति संकरण से उकठा रोग का निदान

प्रदीप कुमार विश्वकर्मा[1,3]**, सी. वासुगी**[1]**, एस. के. सिंह**[2]**, ए. के. झा**[2] और **पी. सी. त्रिपाठी**[2]

अमरूद एक साल में तीन बार बहुत ही स्वादिष्ट फल देने वाला पौधा है। लेकिन उकठा रोग के कारण इसका उत्पादन एवं उत्पादकता दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। इस प्रकार रोगरोधी जंगली प्रजातियों के साथ संकरण के माध्यम से नयी रोगरोधी किस्में विकसित करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। उकठा रोग का मुख्य कारण इसकी जड़ों को प्रभावित करने वाला जड़-गांठ सूत्रकृमि एवं फ्यूजेरियम नामक कवक हैं। इसके लिए सबसे पहले कृत्रिम तरीके से रोगजनक को डालकर परीक्षण में पता चला कि अमरूद की सीडियम कैटलियानुम जंगली प्रजाति सूत्रकृमि एवं फ्यूजेरियम कवक से रोगरोधी है। इसके परागों का प्रयोग करके 1000 संततियाँ विकसित की गयीं तथा रोगजनक के प्रति परीक्षण के बाद उनमें से 35 संततियाँ उकठा रोग के रोगरोधी पायी गयीं।

अमरूद (सीडियम गुजावा) को गरीबों का सेब भी कहा जाता है। यह फल पोषक तत्वों से भरपूर एवं देश के हर हिस्से में आसानी से उपलब्ध होता है। इसे अन्य नामों से भी जानते हैं, जैसे उत्तर भारत में लोग बिही, मैथिली में लताम, गुजराती में जामफल एवं कन्नड़ा में सिबेकाई आदि। आज वर्तमान में, अमरूद भारत के सबसे प्रसिद्ध एवं पौष्टिक फलों में से एक है। देश में उत्पादन की दृष्टि से आम, केला, पपीता एवं नीबूवर्गीय फलों के बाद इसका पांचवां स्थान है। अब तक अमरूद का उत्पादन बहुत ही अच्छा रहा है जिसकी मुख्य वजह इसके फलों की मिठास, सुंदरता और उनकी गुणवत्ता है। इस कारण दुनियाभर के लोगों को यह फल अत्यधिक पसंद है। इसके फल पौष्टिक के साथ-साथ औषधीय गुणों से भी भरपूर हैं। अमरूद के उत्पादन हेतु सभी वातावरण अनुकूल हैं चाहे वो कड़ी धूप हो या कड़ाके की ठण्ड। यह हर तरह की मिट्टी में उगाया भी जा सकता है, चाहे वो उपजाऊ हो या लवणीय। हालाँकि, अत्यधिक लवणता वाले क्षेत्रों में इसे उगाना थोड़ा मुश्किल है, परन्तु कुछ जंगली प्रजातियां (सीडियम कैटलियानुम) अत्यधिक लवणता के साथ भी फल उत्पादन करने में सक्षम पायी गयी हैं।

भारत में अमरूद की बहुत सी किस्में विकसित की गयी हैं, जैसे अर्का पूर्णा, अर्का रश्मि, एप्पल कलर, ललित, अर्का किरण, स्वेता, धवल, लालिमा इत्यादि। इसमें सबसे लोकप्रिय इलाहाबाद सफेदा है, जिसका उत्पादन उत्तर प्रदेश में बड़े स्तर पर किया जाता है।

उत्तर प्रदेश की जलवायु उत्पादन की दृष्टि से बहुत अच्छी है। यहाँ पर फलों में मिठास के साथ-साथ एक विशेष प्रकार का स्वाद भी विकसित होता है। दूसरी बात यहाँ के किसान वैज्ञानिक विधि से उत्पादन करते हैं। वर्ष 1935 में, उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद शहर के करीब के बक्करपुर क्षेत्र में अमरूद के कुछ बागान अचानक से मुरझाकर मरने लगे थे तथा उनका उत्पादन एवं उत्पादकता

[1]भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु-560 089; [2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद- नई दिल्ली-110 012; [3]कृषि विज्ञान केन्द्र, जाले (दरभंगा)-847 302

रोग के लक्षण

उकठा रोग के शुरुआत में पौधों के पत्ते हल्के पीले रंग के दिखना शुरू हो जाते हैं और इसकी उग्रता बढ़ने पर पत्तियां मुरझा जाती हैं। साथ ही तीक्ष्णता और एपिनेस्टी की हानि भी प्रतीत होती है। कुछ टहनियाँ नंगी होकर सूखना शुरू हो जाती हैं और नए पत्ते या फूलों का निकलना भी बंद हो जाता है। यह लक्षण शुरू होने के बाद पौधा मुरझाकर सम्पूर्ण सूख जाता है। जड़ें भी बेसल क्षेत्र में सड़ती हुई दिखाई देगी और छाल आसानी से तने से अलग होने लगती है। संवहनी ऊतकों में हल्के भूरे रंग का मलिनीकरण भी देखा जाता है। उपरोक्त लक्षण दिखाई देने पर तुरंत के नजदीकी भाकृअनुप संस्थान, कृषि विश्वविद्यालय या कृषि विज्ञान केन्द्र से संपर्क करके बागान की जान एवं उत्पादकता बचाई जा सकती है।

सीडियम गुजावा **सीडियम कैटलियानुम**

अंतरजाति संकरण से विकसित रोग प्रतिरोधी संतति

अचानक से गिरने लगी थी। इस घटना के बाद संपूर्ण देश के वैज्ञानिक शोध करके इसके मुरझाने के रोग का पता लगाने की कोशिश करने लग गए। फिर एक शोध से बाद पता चला कि इसकी मुख्य वजह फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम फॉर्म स्पि. सीडी कवक और जड़गाँठ सूत्रकृमि मेलोइडोगाइन इंकॉगनिता का सम्मिलित आक्रमण है।

इस रोग का प्रकोप धीरे-धीरे बढ़ता है और एक पौधे से दूसरे पौधे तक शीघ्रता से पहुंच जाता है। यह रोग अब बड़े स्तर पर देश के हर भाग तक फैल चुका है। ज्यादातर किसान इसकी रोकथाम के लिए रसायनों का प्रयोग बड़े स्तर पर करते हैं। इससे अमरूद के पौधे की सेहत और मृदा का स्वास्थ्य अधिक बिगड़ जाता है। इसके फलों की मिठास भी धीरे-धीरे कम होती जाती है।

रोग की रोकथाम के लिए केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने एक कवक की स्ट्रेन 'एस्परजिलस नागइर-17 विकसित की थी। इससे यह रोग काफी हद तक नियंत्रित हो सकता है लेकिन यह एक स्थायी निराकरण नहीं है क्योकि रोगजनक इसके विरुद्ध बहुत जल्द प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर सकता है। इसके कारण मुरझाने की समस्या और भी बढ़ सकती है जिससे इसकी रोकथाम में कोई भी रसायन या क्रियाएं काम नहीं करेंगी।

इसकी प्रभावी रोकथाम के लिए भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु के वैज्ञानिकों ने अपने शोध में कई जंगली प्रजातियों जैसे सीडियम कैटलियानुम, सी. मोल्ले, सी. गुइनेन्स, सी. चिनेन्सिस, सी. फ्राइडरिचस्थालीअनुम और कई किस्मों का कृत्रिम तरीके से परीक्षण किया। जिसमें सीडियम कैटलियानुम उकठा एवं जड़-गांठ सूत्रकृमि रोग से प्रतिरक्षी (इम्यून) एवं सी. फ्राइडरिचस्थालीअनुम रोग प्रतिरोधी साबित हुई।

अंतरजाति संकरण

नयी किस्म को विकसित करने के लिए, अभी तक विभिन्न देशों के शोधकर्ताओं ने अन्त: प्रजाति संकरण कर संततियों को विकसित किया। इस कारण अभी तक कोई भी संततियां रोगरोधी नहीं विकसित हुयी। लेकिन भविष्य में खेती करने के लिए रोगमुक्त संततियों को विकसित करना अति आवश्यक है। इसके लिए वैज्ञानिकों द्वारा रोगरोधी जंगली प्रजाति (सीडियम कैटलियानुम) के साथ संकरण कर कई रोगरोधी संततियां विकसित की गयी। इसमें सीडियम गुजावा की तरह फलों में मिठास, स्वाद और सुंदरता एवं पौधों में जैविक विकारों से लड़ने के लिए जंगली प्रजातियों जैसी अद्‌भुत क्षमता पायी गई। अंतत: अमरूद को इस उकठा जैसे भयंकर रोग से बचाने के लिए जंगली प्रजातियों की मदद से वैज्ञानिको ने रोग प्रतिरोधी किस्में विकसित करने में सफलता हासिल की।

इस रोग के स्थायी निवारण के लिए कई बार अंतरजाति संकरण करने के पश्चात ऐसी संततियों का विकास हुआ जो उकठा जैसे रोग के लिए ही प्रतिरोधक हैं। लेकिन इसमें एक बहुत गंभीर समस्या थी, जब सीडियम गुजावा में फूल आते हैं तब जंगली प्रजातियों में फूल नहीं आते हैं। इसके लिए शोधकर्ताओ ने एक गजब तरीका विकसित किया और रोग प्रतिरोधी जंगली प्रजातियों के परागकणों को अत्यंत कम तापमान पर तरल नाइट्रोजन में भण्डारण किया और जब सीडियम गुजावा में फूलों का आना होता था तब इन परागकणों की मदद से परागण को संपन्न करके फूलों से लेकर फल बनने की प्रक्रिया को करवाया गया।

उपरोक्त रोगरोधी संततियों के विकास से अमरूद उत्पादन के लिए पौधों एवं मृदा को ज्यादा दिनों तक रसायनों का प्रयोग झेलना नहीं पड़ेगा। साथ ही इससे किसानों की आय एवं लोगों के स्वास्थ्य में भी इजाफा होगा।

परागकणों का क्रायोप्रिजर्वेशन एवं प्रजनन क्षमता परीक्षण

रोगरोधी प्रजातियों के परागकणों को भण्डारित करने के लिए सबसे पहले उनके फूलों को खुलने के एक दिन पहले बटर पेपर की मदद से बंद किया गया और दूसरे दिन सुबह परागकण इकठ्ठा किया गया। इसके बाद एक कैप्सूल में पैक करके ऊपर से एल्युमीनियम फॉयल में रखकर धीरे-धीरे से तरल नाइट्रोजन में भण्डारित कर दिया गया। अमरूद के पौधों में मादा फूलों पर इन क्रायोप्रिजर्व्ड परागों से परागण करके एवं लैब में परागों का इन विट्रो जमाव देखकर इनकी प्रजनन क्षमता का भी परीक्षण किया गया, जिससे दोनों प्रकार के परागों (ताजे एवं क्रायोप्रिजर्व्ड) की सफलतापूर्वक प्रजनन क्षमता सिद्ध हुई।

दरअसल जंगली प्रजातियों के परागकणों में जमाव का प्रतिशत (सीडियम कैटलियानुम में 3.27% बहुत कम था इसीलिए एक अनुकूल सुक्रोस मीडिया (5% सुक्रोस + 100 पीपीएम बोरिक एसिड) भी विकसित की गयी। बाद में विकसित मीडिया की मदद से क्रायोप्रिजर्व्ड परागों का एक-एक महीने के अंतराल पर पूरे 6 महीनों तक परागों का इन विट्रो जमाव देखकर प्रजनन क्षमता का भी परीक्षण किया गया। 6 महीने पुराने तरल नाइट्रोजन में भण्डारित परागकणों की मदद से परागण भी संपन्न किया गया। जिसके फलस्वरूप 1000 संततियाँ विकसित की गयी।

शोध

अंतरजातीय संकरण से प्राप्त संततियों को उकठा रोग के लिए कृत्रिम विधि से कई बार परीक्षण किया गया, जिससे अतिसंवेदनशील पौधे मर गए और अंतत: सिर्फ 35 पौधे रोगरोधी पाए गए। यह भविष्य में मूलवृन्त एवं फलदार पौधों के रूप में बहुत ही उपयोगी साबित हो सकते हैं। यह शोध भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु के शोधकर्ताओं द्वारा किया गया जिसके फलस्वरूप विकसित रोगरोधी संततियों का इस्तेमाल भविष्य में नई प्रजातियों को विकसित करने में किया जा सकता है।

लहसुन की उन्नत खेती

अनिल खार, स्वाति साहा और **भागचन्द शिवरान**

लहसुन एक औषधियुक्त नकदी फसल है। इसकी खेती भारत के सभी भागों में की जाती है। इसका उत्पादन मुख्य रूप से मध्यप्रदेश (62%), राजस्थान (16%), उत्तरप्रदेश (6.57%) एवं गुजरात (3%) में होता है, जो अन्य राज्यों से ज्यादा है। लहसुन को कई तरह की दवाइयों एवं मसालों के रूप में उपयोग किया जाता है जैसे अचार, चटनी, कैचअप तथा सब्जियों में आदि। बढ़ती हुई विदेशी माँग के मद्देनजर कृषक इसका निर्यात करके ज्यादा लाभान्वित हो सकते हैं। इसके लिए जरूरत है, उच्च गुणवत्तायुक्त उत्पादन, वैज्ञानिक खेती एवं प्रसंस्करित उत्पाद बनाने की, ताकि इसकी खेती को प्रसंस्करित उद्योग बनाकर लाभ को और अधिक बढ़ाया जा सके। इसमें विटामिन 'सी', फॉस्फोरस, प्रोटीन, आयरन आदि पौष्टिक तत्व पाये जाते हैं। लहसुन शल्क कंदीय कोमल पौधा है, जिसमें अनेक छोटी-छोटी 9 से 50 कलियाँ होती हैं जो ऊपरी आवरण से ढकी रहती हैं।

लहसुन, भारत में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण कंद वाली फसल है। इसे मसाले के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके अलावा खांसी एवं सर्दी के उपचार, रक्तचाप को कम करना, प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ावा देना इत्यादि के लिए इसमें भरपूर औषधीय गुण भी मौजूद हैं। अच्छी उपज के साथ स्वस्थ फसल प्राप्त करने के लिए हमें उचित कृषि पद्धतियों, रोगों एवं कीटों का समय पर प्रबंधन करना आवश्यक है।

जलवायु एवं भूमिः लहसुन की खेती विभिन्न प्रकार की जलवायु परिस्थितियों में की जाती है। हालांकि, यह फसल बहुत अधिक गर्म और ठंडा तापमान सहन नहीं कर सकती है। वानस्पतिक वृद्धि और बल्ब विकास के चरणों के दौरान इसे ठंडी और नम जलवायु की आवश्यकता होती है लेकिन परिपक्वता के दौरान गर्म-शुष्क मौसम की आवश्यकता होती है। सामान्य तौर पर ठंड में गर्म परिस्थितियों की तुलना में अधिक उपज होती है। पौधों को किस्म के आधार पर 1-2 महीने तक 20°C या इससे कम तापमान के संपर्क में रखने से बाद में बल्ब बनने की गति तेज हो जाती है। जो पौधे ऐसी जलवायु परिस्थितियों के संपर्क में नहीं आते हैं वे बल्ब पैदा करने या छोटे बल्ब पैदा करने में विफल हो सकते हैं। हालाँकि, कम तापमान में लंबे समय तक रहने से पत्तियों की धुरी में बल्ब पैदा हो सकते हैं, इससे बल्ब की उपज कम हो जाती है।

बल्ब लगाने के लिए दिन की लंबाई महत्वपूर्ण होती है - छोटे दिन के लहसुन के लिए 10-12 घंटे और लंबे दिन के लहसुन के लिए 13-14 घंटे आवश्यक है।

लहसुन की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस फसल को उगाने के लिए 6-8 पीएच मान वाली एवं जल निकासी वाली उपजाऊ दोमट मिट्टी उपयुक्त है। लहसुन अत्यधिक अम्लीय, क्षारीय और लवणीय मिट्टी एवं जल जमाव की स्थिति के प्रति संवेदनशील है। उच्च कार्बनिक पदार्थ वाली मिट्टी को उनकी बढ़ी हुई नमी और पोषक तत्व धारण क्षमता के कारण पसंद किया जाता है। इनमें पपड़ी बनने और संघनन की आशंका कम होती है। भारी मिट्टी में उत्पादित बल्ब विकृत हो सकते हैं। विपरीत जल निकासी वाली मिट्टी में बल्ब बदरंग हो जाते हैं।

लहसुन की फसल के लिए संतृप्ति अर्क की विद्युत चालकता 3.9 dS/m है। जब ECe स्तर इससे अधिक हो जाता है तो फसल की पैदावार घटने लगती है।

उन्नत किस्में: नकदी फसल होने के कारण तथा अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए, अधिक उत्पादन देने वाली उन्नत किस्मों

भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, पुणे, सर्वे सं. 125ए, बाणेर फाटा, आई. टी. आई. रोड़, औंध, पुणे-411067

बैंगनी धब्बा

यह रोग अल्टरनेरिया पोरी नामक कवक से होता हैं। यह रोग पौधों की किसी भी अवस्था में आ सकता हैं इस रोग में पत्तियों या पुष्प (फूल) गुच्छे की डंडियों पर आरंभ में छोटे, दबे हुए, बैंगनी केन्द्र वाले लंबवत सफेद धब्बे बनते हैं। यह धब्बे धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं तथा आरंभ में बैंगनी होते हैं। जो बाद में काले हो जाते हैं। धब्बे बड़े होकर आपस में मिल जाते हैं और पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती हैं। खरीफ मौसम में इस रोग का अधिक प्रकोप होता है।

रोकथाम: बुआई से पूर्व बीजों/ कलियों को 2-3 ग्राम डाइथायोकार्बामेट प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का प्रमाण से अधिक और देर से प्रयोग नहीं करना चाहिए। रोपण के 30 दिनों के बाद या रोग प्रकट होते ही, 10-15 दिनों के अंतराल पर मैंकोजेब (0.1%) या हेक्साकोनाजोल (0.1%) या प्रोपिकोनाजोल (0.1%) का छिड़काव करें।

को ही उगाना चाहिए। अत: ऐसी किस्मों का चयन करें, जिसकी बाजार में अधिक माँग हो ताकि मूल्य अधिक मिल सके। कृषकों को मोटी कलियों वाली किस्मों का चयन करना चाहिए ताकि वे ज्यादा लाभान्वित हों। लहसुन की निम्न उन्नत किस्में वर्णित हैं:

यमुना सफेद (जी-1): इस किस्म को राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित किया गया है, जो सम्पूर्ण भारत में उगाने हेतु सिफारिश की गयी है। इसके कंद गठीले एवं बाहरी त्वचा का रंग सफेद चांदी की चमक, गूदा क्रीम रंग का होता है। कंद का औसत व्यास (4-4.5 सें.मी.) एवं एक गाँठ में 25-30 कलियाँ पाई जाती हैं। यह प्रजाति 150-160 दिनों में तैयार होती है तथा यह किस्म पर्पल ब्लोच एवं स्टेमफाईलीयम रोग के प्रति सहनशील है। इसका उत्पादन 150-160 क्विंटल प्रति हैक्टर पाया गया है।

यमुना सफेद-2 (जी-50): यह किस्म राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित की गई है। इसकी गाठें गठीली एवं त्वचा सफेद होती है। कंद का औसत व्यास 4 सें.मी. है तथा कलियाँ 18-20 तक होती हैं। फसल समयावधि 165-170 दिन तथा उपज 150-155 क्विंटल प्रति हैक्टर है। यह किस्म पर्पल ब्लोच एवं स्टेमफाईलीयम रोग के प्रति सहनशील है।

जी-50

एग्रीफाउंड सफेद (जी-41): यह किस्म राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित है। इसकी गांठें गठीली मध्यम आकार के 3.45 सें.मी. व्यास की होती हैं। प्रति गांठ में 20-25 कलियाँ पायी जाती हैं। यह प्रजाति 150-160 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी उपज 130-140 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

जी-41

यमुना सफेद-3 (जी-282): इस किस्म को राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित किया गया है। यह किस्म बड़े आकार वाली 5.8 सें.मी. तथा अधिक उत्पादन के लिए जानी जाती है। इसका उत्पादन 175-200 क्विंटल प्रति हैक्टर तक पाया गया है। इसके कंद गठीले एवं त्वचा का रंग सफेद चांदी जैसा होता है। इसकी कली की माप 1.04-1.05 सें. मी. एवं वजन 2.5-2.8 ग्राम होता है। प्रति कंद कलियों की संख्या 15-17 होती है। यह प्रजाति 140-150 दिनों में तैयार होती है। यह प्रजाति निर्यात के लिये उपयुक्त है।

जी-282

यमुना सफेद-4 (जी-323): यह किस्म राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित है। इसके कंद सफेद बड़े आकार वाले (3.5-4.0 सें.मी.) एवं 30 से 35 की संख्या में कलियाँ पाई जाती हैं। इसकी पैदावार 175-200 क्विंटल प्रति हैक्टर तथा इसके कंद भण्डारण के लिए उपयुक्त हैं। उत्तरी भारत में इसकी पैदावार अच्छी होती है।

एग्रीफाउन्ड पार्वती- (जी-313): इस किस्म को राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित किया गया है। यह किस्म पहाड़ी भागों में उगाये जाने के लिए उपयुक्त है। इसकी बुआई सितम्बर से अक्टूबर में तथा खुदाई मई माह में करते हैं। यह किस्म 250-270 दिनों में तैयार हो जाती है तथा कंद का व्यास 5-7 सें.मी. होता है। इसकी पैदावार 175-200 क्विंटल प्रति हैक्टर तक पाई गई तथा निर्यात के लिय उपयुक्त है।

भीमा ओंकार: यह किस्म प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म को दिल्ली, गुजरात, हरियाणा और राजस्थान राज्यों में खेती के लिए अनुशंसित किया गया है। यह 120-135 दिनों में पक जाती है और औसत उपज 8-14 टन/हैक्टर होती है। इसमें मध्यम आकार के कॉम्पैक्ट सफेद बल्ब पैदा होते हैं।

भीमा ओंकार

भीमा पर्पल: यह किस्म प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय द्वारा विकसित की गई है। आकर्षक बैंगनी छिलके वाले बल्बों वाली इस किस्म को आंध्र प्रदेश, बिहार, दिल्ली, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब और उत्तर प्रदेश राज्यों में खेती के लिए अनुशंसित किया गया है। यह 120-135 दिनों में पक जाती है और औसत उपज 6-7 टन/हैक्टर होती है।

खेत की तैयारी: भरपूर उपज के लिए खेत की तैयारी बहुत जरूरी है। खेत में 2-3 जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बनाकर तथा खरपतवार निकालकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। इसके लिए दो गहरी जुताई करने के बाद, हैरो चलाना चाहिए। कंदीय फसल

थ्रिप्स की रोकथाम

यह लहसुन का प्रमुख नुकसानदायक कीट है। ये कीट आकार में बहुत छोटे होते हैं। प्रौढ़ कीट नई पत्तियों का रस चूसते हैं। कीटों के रस चूसने से पत्तियों पर असंख्य सफेद रंग के निशान दिखते हैं। अधिक प्रकोप से पत्तियां मुड़कर झुक जाती हैं। फसल की किसी भी अवस्था में कीटों का प्रकोप हो सकता है। रोपाई के तुरन्त बाद इनके प्रकोप से पत्तियां मुड़ने के कारण कन्दों का पोषण नहीं होता है। थ्रिप्स के कारण पत्तियों में बैंगनी, काले भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। तथा अन्य कवकों के रोगाणु पौधों में प्रवेश कर जाते हैं तथा पूरे पौधे को संक्रमित कर देते हैं।

रोकथामः लहसुन की रोपाई से पूर्व खेत में फोरेट 10 जी (4 कि.ग्रा. प्रति एकड़) या कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 14 कि.ग्रा. मात्रा प्रति एकड़ की दर से मृदा में मिलानी चाहिए। प्रत्येक 12-15 दिनों के अन्तराल पर डायमेथोयट (0.03%) 15 मि.ली., मोनोक्रोटोफॉस (0.07%) 20 मि.ली. या साइपरमीथ्रिन (10 ईसी) 5 मि.ली. या प्रोफेनोफॉस 10 मि.ली. आदि दवाओं में से कोई एक दवा प्रति 10 ली. पानी में मिलाकर अदल-बदल कर छिड़काव करना चाहिए। इस प्रकार कम से कम 4-5 छिड़काव की आवश्यकता होती है।

होने के कारण भूमि भुरभुरी तथा उत्तम जल निकास वाली होनी चाहिए।

बुआईः कलियों का चयन लहसुन के रोपण के लिए महत्वपूर्ण है। बोने से पहले कलियों को कंद से अलग कर लें, लेकिन लंबे समय से पहले नहीं। बड़ी कलियां रोपण के लिए चयनित की जानी चाहिए। कलियों को कार्बेण्डाजिम 0.1 प्रतिशत के घोल से उपचारित करना चाहिए, जिससे कवकजनित रोगों के प्रभाव को कम किया जा सके। लहसुन के लिए बीज दर 400-500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त होती है। इनकी रोपाई का समय अक्टूबर से नवम्बर है। बोते समय इसके लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 10-15 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 7 से 10 सें.मी. रखते हुए 2-3 सें.मी. गहरी बुआई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरकः खेत की तैयारी के समय 200-250 क्विंटल गोबर की खाद प्रति हैक्टर के हिसाब से जमीन में मिला देनी चाहिये। इसके अलावा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश क्रमशः 100,50,50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर, कलियाँ लगाने से पहले देनी चाहिए। यूरिया की आधी मात्रा 30-45 दिनों बाद खड़ी फसल में गुड़ाई कर सिंचाई के साथ देनी चाहिए। लहसुन की फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे मैंग्नीज सल्फेट 0.1 प्रतिशत, बोरिक ऐसिड 0.02 प्रतिशत व जिंक सल्फेट 0.02 प्रतिशत का छिड़काव करने से फसल की गुणवत्ता एवं उत्पादन अधिक होता है।

स्टेमफाईलियम ब्लाइट का प्रकोप

खरपतवार नियंत्रणः अंकुरण से पूर्व प्रति हैक्टर 150 ग्राम ऑक्सीफ्लोरफेन (600 ग्राम घोल) अथवा एक कि.ग्रा. पेण्डीमेथिलीन (3.3 कि.ग्रा. स्टाम्प एफ 43) छिड़कें। तत्पश्चात् 40 दिन की फसल में एक गुड़ाई करें।

सिंचाई एवं निराई-गुड़ाईः कलियों की बुआई के बाद एक हल्की सिंचाई करें तथा बढ़वार के समय 8 दिनों अन्तराल पर एवं पकने के समय 10-15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। पकने पर जब पत्तियाँ सूखने लगें तो सिंचाई बंद कर दें। खरपवतार नष्ट करने के लिये निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है। निराई-गुड़ाई गहराई तक नहीं करनी चाहिए।

खुदाईः लहसुन 4 से 5 महीनों की अवधि की फसल है। जब पत्ते पीले या भूरे होने प्रारंभ हो जाएं और सूखने के लक्षण दिखने लगे तब पौधे कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। खुदाई करने के पश्चात कम से कम 2-3 दिनों के लिए खेत में सूखने के लिए छोड़ दें ताकि बल्ब की गुणवत्ता लंबे समय तक बरकरार रहे। बल्ब को एक अच्छे हवादार कमरे में सूखे फर्श एवं सूखी रेत पर रखना चाहिए।

लहसुन की उपजः यदि सभी कृषि संबंधी पद्धतियों को अपनाया जाए तो 80-150 क्विंटल प्रति हैक्टर लहसुन की उपज प्राप्त की जा सकती है।

भण्डारणः लहसुन के अधिक समय तक भण्डारण के लिए भण्डारण गृहों का तापमान तथा अपेक्षाकृत आर्द्रता महत्वपूर्ण हैं। अत्यधिक आर्द्रता (70 अनुपात से अधिक) लहसुन के भण्डारण हेतु हानिकारक है। इससे फफूंदों का प्रकोप भी बढ़ता है एवं कंद सड़ने लगते हैं। इसके विपरीत कम आर्द्रता (65 अनुपात से अधिक) होने पर लहसुन में वाष्पोत्सर्जन अधिक होता है तथा वजन में कमी होने लगती है। लम्बे समय तक भण्डारण के लिए भण्डार गृह का तापमान -1 से 0 सेंटीग्रेड तथा 65-70 प्रतिशत के मध्य आर्द्रता होनी चाहिए।

प्रमुख रोगों की रोकथाम

स्टेमफाईलियम ब्लाइट

यह रोग *स्टैम्फिलियम वेसिकेरियम* नामक कवक से होता है। इस रोग के कारण उपज में 5.0-43 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है। पत्ती के बीच में पीले या नारंगी रंग के धब्बे या धारियाँ विकसित होती हैं, जो जल्द ही विशिष्ट गुलाबी किनारों से घिरी धुरी के आकार की हो जाती हैं। धब्बे पत्तियों के शीर्ष से आधार तक बढ़ते हैं और विस्तारित पैच में एकत्रित हो जाते हैं, जिससे धीरे-धीरे पूरी पत्तियां झुलस जाती हैं।

रोकथामः रोपाई के 30 दिनों के बाद या जैसे ही रोग प्रकट हो, 10-15 दिनों के अंतराल पर फफूंदनाशी, मैंकोजेब / 0.25% / ट्राइसाइक्लाजोल / 0.1% / हेक्साकोनाजोल/

श्याम व्रण (काला धब्बा)

यह रोग *कोलेटोट्रायकम ग्लेओस्पोराइडम* कवक से होता है। रोग के प्रारम्भ में पत्तियों के बाहरी भाग पर जमीन से लगने वाले भाग में राख जैसे चकते बनते हैं जो बाद में बढ़ जाते हैं और सम्पूर्ण पत्तियो पर काले रंग के उभार दिखने लगते हैं। ये उभार गोलाकार होते हैं। इससे प्रभावित पत्तियां मुरझाकर मुड़ जाती हैं और अंत में सूख जाती हैं। एक के बाद एक पत्तियाँ लगातार काली हो जाती हैं और अंत में पौधे मर जाते हैं। खरीफ मौसम में नमी वाले वातावरण में इस रोग की शीघ्र वृद्धि होती है।

रोकथामः रोपाई से पूर्व पौधों की जड़ों को कार्बेण्डाजिम 2 ग्रा./ली. पानी में घोलकर उपचारित करना चाहिए। पौधशाला में बीज उपचार के उपरांत ही बोने चाहिए। इसके लिए मैंकोजेब (डाईथेन एम-45) (30 ग्राम) या कार्बेण्डाजिम (20 ग्राम) को 10 लीटर पानी में घोलकर 12-15 दिनों के अन्तराल पर बारी-बारी से छिड़काव करना चाहिए।

0.1% / प्रोपिकोनाजोल / 0.1% की फुहार करें।

सफेद सड़नः यह रोग *स्क्लेरोटियम सेपिवोरम* नामक कवक से होता हैं। पत्तों की नोकों का पीला पड़ना, पीछे का भाग मरना, जड़ें सामान्यतः नष्ट हो जाना इस रोग का लक्षण है। सड़ते हुए शल्कों पर सतही सफेद रोएंदार मायसेलियम मौजूद हो सकता है। भूरा या काला स्क्लेरोटिया सतह पर या ऊतक के भीतर विकसित होता है।

रोकथामः फसलचक्र अपनाना चाहिए, संक्रमित पौधे को नष्ट कर देना चाहिए तथा इन पौधों के आसपास की मिट्टी का उपचार करना चाहिए। उच्च तापमान पर मिट्टी का सौरीकरण करने से रोग का संक्रमण कम होता है। रोग को नियंत्रित करने के लिए 0.1% कार्बेण्डाजिम का प्रयोग लाभकारी होता है।

ब्लैक मोल्डः यह रोग एस्परगिलस प्रजाति नामक कवक से होता हैं। बल्बों की गर्दन पर काला मलिनीकरण और बाहरी शुष्क शल्कों के नीचे काली मायसेलियम और कोनिडिया की धारियाँ दिखाई देती हैं। उन्नत अवस्था में सभी शल्क संक्रमित हो जाते हैं और बल्ब सिकुड़ जाता है।

रोकथामः पर्याप्त सूखने के बाद, बल्बों को सूखी स्थिति में संग्रहित करें। बल्बों की कटाई के उपरांत ध्यान रखें कि बल्ब को चोट न लगे।

आधार विगलनः यह रोग *फ्युजेरियम ऑक्सिस्पोरियम* सिपे नामक कवक से होता है। अधिक तापमान तथा अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों में इस रोग का अधिक प्रकोप होता है। पौधों की कम वृद्धि तथा पत्तियों का पीला पड़ना, इस रोग के प्रथम लक्षण हैं। रोपाई किये किए पौधों की जड़ें सड़ने लगती हैं तथा पौधे आसानी से उखड़ जाते हैं। रोगग्रस्त पौधों की जड़ें काली होकर भूरी होने लगती हैं तथा पतली हो जाती हैं। रोग के अधिक प्रकोप में कन्द जड़ के पास से सड़ने लगते हैं और मर जाते हैं।

रोकथामः इस रोग के कारक जमीन में ही रहते हैं। इस कारण उचित फसल चक्र अपनाना आवश्यक है। बीज को डायथायोकार्बामेट (2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करके ही बोना चाहिए। गोबर की खाद के साथ खेत में *ट्राइकोडर्मा विरीडी* 5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से मिलाना चाहिए। क्षतिग्रस्त बल्बों को संग्रहीत न करें। बल्बों का अच्छे वेंटिलेशन वाली सूखी परिस्थितियों में संरक्षण करें।

प्याज पीला बौना वायरसः यह एक विषाणु रोग है जो एफिड्स के द्वारा फैलता है। हल्की क्लोरोटिक धारियाँ से लेकर चमकीली पीली धारियाँ, मोजैक, पत्तियों का मुड़ना तथा पौध के अवरुद्ध विकास ही इस रोग के लक्षण हैं ।

रोकथामः स्वस्थ एवं विषाणु रहित रोपण सामग्री का उपयोग करें। एफिड्स जो इस विषाणु का वाहक है एवं इसके नियंत्रण के लिए कीटनाशकों प्रोफेनोफोस / 0.1% या कार्बोसल्फॉन (0.2%) या फिप्रोनिल (0.1%) का पत्तियों पर छिड़काव करें।

मैगटः यह कीट अण्डों से निकलकर तना एवं गांठों (कंदों) में प्रवेश कर नुकसान पहुँचाता है तथा क्षतिग्रस्त स्थान पर अन्य सूक्ष्म जीवों से संक्रमित होकर कंद सड़ जाते हैं, जो भण्डारण के दौरान अन्य कंदों को सड़ा देते हैं। ठण्डा तथा नम मौसम कीट प्रकोप को बढ़ावा देता है, अतः कीट प्रकोप दिखाई पड़ने पर इमिडाक्लोप्रिड (1.0 मि.ली.) प्रति लीटर का घोल बनाकर छिड़काव करें।

सूत्रकृमिः फसल में इसका प्रकोप होने पर फसल की बढ़वार रुक जाती है तथा पत्तियाँ कुरूप नजर आने लगती हैं जो कि उत्पादन पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। अतः इसके नियंत्रण हेतु कार्बोफ्यूरॉन-3 जी 25-20 कि.ग्रा. या नेमाफोस 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुआई से पूर्व खेत में मिलाएं ताकि सूत्रकृमि के नुकसान से बचा जा सके।

माइटः यह कीट पत्तियों का रस चूसता है जिससे पत्तियों पर पीले धब्बे बन जाते हैं। परिणामस्वरूप पौधे की बढ़वार रुक जाती है। इसके नियंत्रण हेतु डाईमैथोएट या एथियान (0.05 प्रतिशत) शुरुआती प्रभाव दिखाई देने पर छिड़काव करें।

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' जुलाई, 2025 अंक के प्रमुख आकर्षण

- पुराने तालाबों का रखरखाव
- ग्रीष्मकालीन मानसून में मौसमी बदलाव
- बहुवर्षीय नेपियर घास का सफल उत्पादन
- एकीकृत जलीय कृषि से सतत आजीविका
- सिंचाई जल का परीक्षण एवं प्रबंधन
- पुनर्योजी कृषि के लिए मशीनीकरण
- सतत कृषि हेतु प्राकृतिक खेती
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता से कृषि में क्रांतिकारी परिवर्तन
- रेनबो ट्राउट में प्रमुख रोगों का निदान
- बीज की आयु का माइटोकॉन्ड्रियल आधार

संपर्क सूत्रः प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाषः 25843657, www.icar.org.in

जानकारी

मानसून में करें बागों की विशेष देखभाल

हरे कृष्णा[1], **अरविंद कुमार सिंह**[2], **नृपेन्द्र विक्रम सिंह**[3], **विनय कुमार पटेल**[1] और **शुभम कुमार तिवारी**[1]

'रहिमन पानी रखिए, बिन पानी सब सून' जैसी पुरातन लोकोक्ति जल के महत्व को रेखांकित करती है और भारत जैसे कृषि प्रधान देश के परिप्रेक्ष्य में यह विशेष रूप से सत्य है। जुलाई और अगस्त (सावन-भादो) फल बागानों के उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण महीने हैं, क्योंकि दक्षिण-पश्चिम मानसून इस समय जल उपलब्धता, वानस्पतिक वृद्धि, बागान प्रबंधन और भविष्य की फसलों की तैयारी को प्रभावित करता है। मानसून प्रमुख फल फसलों जैसे आम, नीबू, अमरूद, लीची, सेब, आंवला और बेर के लिए आवश्यक नमी प्रदान करता है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम होती है, मिट्टी की नमी बढ़ती है और विशेष रूप से नए बागानों में वृद्धि को बढ़ावा मिलता है। यह वर्षा सभी प्राकृतिक जल स्रोतों जैसे नदियों, तालाबों और गड्ढों का पुनर्भरण करती है। इससे ग्रीष्म के ताप से दग्ध धरा तृप्त हो जाती है। पेड़-पौधे हरे-भरे होकर नवजीवन का संचार करते हैं, जिससे पशु-पक्षियों और मनुष्यों में भी उल्लास और उत्साह का संचार होता है। हालांकि, अत्यधिक वर्षा निचले क्षेत्रों में जलभराव का कारण बन सकती है, जिसके लिए नीबू और आम जैसी फसलों में प्रभावी जल निकासी व्यवस्था आवश्यक है।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार, इस वर्ष सामान्य से अधिक वर्षा की संभावना है, अत: बागानों में जल के ठहराव को रोकने और जड़ गलन से बचाव के लिए समुचित प्रबंधन आवश्यक है। नए बागानों की स्थापना के लिए यह आदर्श अवधि है, क्योंकि मिट्टी की नमी और अनुकूल तापमान मजबूत जड़ विकास को बढ़ावा देते हैं। आम, अमरूद, अनार, आंवला और बेर की रोपाई के लिए यह उपयुक्त समय है। अनुकूल तापमान और आर्द्रता के कारण यह समय कायिक प्रवर्धन के लिए भी सर्वोत्तम है।

आर्द्रता और गर्मी नवरोपित पौधों में छत्रक (कैनोपी) विकास को प्रोत्साहित करती है और परिपक्व बागानों में छंटाई और प्रशिक्षण से प्रकाश प्रवेश, वायु संचरण एवं रोग निवारण में सुधार होता है, जो आगामी मौसम के पुष्पण के लिए आधार तैयार करता है। इस समय नाइट्रोजन और पोटेशियम जैसे उर्वरकों का उपयोग किया जाता है, और वर्षा पोषक तत्वों के अवशोषण में सहायता करती है। हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड जैसे पहाड़ी क्षेत्रों में, पलवार (मल्चिंग) और कंटूर बंडिंग जैसी मिट्टी संरक्षण प्रथाएं कटाव को नियंत्रित करती हैं और नमी बनाए रखती हैं, जिससे सेब, आड़ू और खुबानी जैसे समशीतोष्ण फलों को लाभ होता है। उच्च आर्द्रता और वर्षा से कीटों और रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है।

खरपतवार भी इस समय बहुतायत में उग आते हैं, जिन्हें निकालना आवश्यक है। नियमित निगरानी, समय पर कवकनाशी छिड़काव, एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियां और खरपतवार नियंत्रण बागानों की सेहत, विशेष रूप से प्रमुख व्यावसायिक फसलों जैसे आम, नीबू, सेब तथा अंगूर की रक्षा के लिए आवश्यक हैं। इस द्विमाही में, आंवला और बेर जैसे फल वृक्ष ग्रीष्म-सुषुप्तावस्था को पूर्ण कर नई वृद्धि शुरु करते हैं। इसके अतिरिक्त, आम, खजूर, नीबू, अंगूर, सेब आदि फलों को बाजार भेजने की व्यवस्था भी की जाती है। इस प्रकार, जुलाई-अगस्त का मानसून काल उत्तर भारत के फल बागानों के लिए उत्पादन, प्रबंधन और भविष्य की फसलों की तैयारी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आम

जुलाई में मध्यम पकने वाली फल किस्मों की तुड़ाई कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। फलों को 10 मि.मी. डंठल के साथ प्रात: या संध्या काल में तोड़ें और तुड़ाई के तुरंत बाद डिसैपिंग (डंठल से स्राव को अलग करना) करें ताकि फलों की गुणवत्ता बनी रहे। तुड़ाई के बाद फलों को छायादार स्थान पर रखकर या पानी में डुबोकर पूर्व-शीतन (प्री-कूलिंग) करें, जिससे प्रक्षेत्रीय ऊष्मा निकलकर फलों की निधानी आयु (शेल्फ लाइफ) बढ़े। इसके बाद फलों का वर्गीकरण करें: 300 ग्राम से अधिक वजन वाले फलों को ए+ श्रेणी, 250-299 ग्राम को ए श्रेणी, 200-249 ग्राम को बी श्रेणी, 150-199 ग्राम को सी श्रेणी और 150 ग्राम से छोटे फलों को डी श्रेणी में रखें।

फलों की एकसमान परिपक्वता के लिए उन्हें 700 पीपीएम ईथरेल और 500 पीपीएम कार्बेण्डाजिम के 52 डिग्री सेल्सियस गुनगुने

[1]भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश-221 305 [2]केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र, (केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान), वेजलपुर (गोधरा), गुजरात-389 340 [3]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा कैंपस, नई दिल्ली-110 012

फलों से लदी आम की डाली

पानी के घोल में 5 मिनट तक उपचारित करें। बौनी किस्मों की तुड़ाई के लिए सिकेटियर और ओजस्वी किस्मों के लिए 'मैंगो हार्वेस्टर' का उपयोग करें। फलों को बांस की टोकरियों, प्लास्टिक क्रेट्स या कार्टन बक्सों में पैक करें। बांस की टोकरियों में कागज या जूट की तह लगाएं ताकि फलों को घर्षण से नुकसान न हो।

कार्टन बक्सों में ऊर्ध्वाधर विभाजक और पार्श्व संवातन (वेंटिलेशन) छिद्र होने चाहिए। तना छेदक और पत्ती के लिए हानिकारक कीटों से बचाव के लिए डेल्टामेथ्रिन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। जुलाई के दूसरे पखवाड़े में तुड़ाई के बाद प्रत्येक वृक्ष को 500 ग्राम नाइट्रोजन दें।

एन्थ्रेक्नोज (श्याम व्रण) से बचाव के लिए 0.125 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स (125 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव करें। यदि पर्याप्त बारिश हो, तो मई-जून में खोदे गए गड्ढों में रोपाई शुरू करें। रोपाई संध्या काल में या हल्की वर्षा वाले दिन करें। आम के पौधों को सामान्यत: 10 x 10 मीटर की दूरी पर लगाएं, लेकिन सघन बागवानी में आम्रपाली के लिए 2.5 x 2.5 या 5 x 5 मीटर और दशहरी के लिए 3 x 2.5 मीटर की दूरी उपयुक्त है। गड्ढे के केंद्र में कलमी पौधे रोपें, मिट्टी को अच्छे से दबाएं, जिससे जड़ से लगी मिट्टी को नुकसान न हो। कलम बंधन संधि भूमि से ऊपर रहे। रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें।

नए बाग में दो-तीन किस्में (जैसे दशहरी, लंगड़ा, चौसा, बॉम्बे ग्रीन) लगाएं, क्योंकि उत्तर भारत की प्रमुख किस्मों में स्व-अनिषेच्यता की समस्या होती है। दशहरी के बाग में बॉम्बे ग्रीन एवं लंगड़ा, और चौसा के बाग में दशहरी, सफेदा या मलीहाबादी किस्में लगाना लाभकारी है। यह माह विनियर ग्राफ्टिंग के लिए सबसे उपयुक्त है। अगस्त में पछेती किस्मों की तुड़ाई करें और एन्थ्रेक्नोज से बचाव के लिए ब्लाइटॉक्स का दूसरा छिड़काव करें। गोंदार्ति की समस्या होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत), बुझा चूना (0.1 प्रतिशत), और बोरेक्स (0.4 प्रतिशत) के मिश्रण का छिड़काव करें। तराई क्षेत्रों में शूट गॉल मेकर कीटों से बचाव के लिए मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत) या डाइमेथोएट (0.06 प्रतिशत) का छिड़काव करें। अगले वर्ष के लिए मूलवृंत हेतु फलों की गुठलियां एकत्रित कर पौधशाला में बोएं। यदि जुलाई में विनियर ग्राफ्टिंग न हो सकी, तो अगस्त में अवश्य करें।

अमरूद

जुलाई में बाग में रोपण, रिक्त स्थानों की पूर्ति, और पौधे तैयार करें। गूटी या कलम से तैयार अमरूद के पौधों को मृदा गेंद के साथ 45 x 45 x 45 सें.मी. के पहले से खुदे गड्ढों के केंद्र में रोपें। रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई करें, फिर तीसरे दिन और उसके बाद हर 10 दिन पर या आवश्यकतानुसार पानी दें। श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज) रोग नियंत्रण के लिए फलों पर कार्बेण्डाजिम (2 ग्रा./ली.) और तनों एवं पत्तियों पर बोर्डो मिश्रण (3:3:50) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्रा./ली.) का छिड़काव करें। पुराने बागानों में 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें। कीट प्रकोप के लिए क्विनालफॉस 25 ईसी (2 मि./ली.), मोनोक्रोटोफॉस (2 मि./ली.), या 3 प्रतिशत नीम तेल का 21 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। सर्दियों की फसल के लिए फूल आने से पहले 0.4 प्रतिशत बोरिक एसिड का छिड़काव करें ताकि फल आकार और उपज बढ़े। वर्तिकाग्र सड़न रोकने के लिए फलन से पहले कार्बेण्डाजिम (2 ग्रा./ली.) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्रा./ली.) का छिड़काव करें, लेकिन तुड़ाई से 15 दिन पहले कोई छिड़काव न करें।

अगस्त में फल मक्खी के प्रकोप को कम करने के लिए गिरे हुए और ग्रसित फलों को नष्ट करें। छेदक कीटों से बचाव के लिए कीटों को नियमित रूप से एकत्रित कर नष्ट करें और फलन या फल पकने से पहले कीटनाशकों का छिड़काव करें। सूक्ष्म पोषक तत्वों (जिंक, लौह, तांबा, मैंग्नीज) के मिश्रण का 2 मि./ली. की दर से छिड़काव करें। म्लानि (विल्ट) से बचाव के लिए बाग में साफ-सफाई रखें, नीम की खली और जैविक खाद का उपयोग करें, और जल निकासी की उचित व्यवस्था सुनिश्चित करें।

केला

जुलाई में केले के बागानों के लिए, कई महत्वपूर्ण प्रथाओं पर ध्यान देना आवश्यक है। सबसे पहले, पौधों से अवांछित और सूखी

पत्तियों को हटा देना चाहिए। यदि पौधों के तनों के चारों ओर मिट्टी नहीं चढ़ाई गई हो, तो जुलाई के प्रारंभ में यह कार्य पूरा कर लेना चाहिए ताकि जल निकासी का उचित प्रबंधन हो और जलभराव से बचा जा सके। जिन पौधों में फल लगे हों, उन्हें बांस के सहारे से बांधकर सहारा देना चाहिए ताकि तना टूटने या गिरने से बचें।

जुलाई नए केला बाग लगाने के लिए भी उपयुक्त समय है। इसके लिए तलवार के आकार के अंत:भूस्तारी (सकर्स) का चयन करें, जो रोगमुक्त मातृ पौधों से लिए गए हों। भूस्तारी 3-5 महीने पुराने और एकसमान आकार के होने चाहिए। छोटी अवधि वाली किस्मों जैसे नेन्द्रन, रसथाली, पूवन और नेय पूवन के लिए 1-1.5 कि.ग्रा. वजन, जबकि लंबी अवधि वाली किस्मों जैसे कर्पूरवल्ली और लाल केला के लिए 1.5-2.0 कि.ग्रा. वजन के भूस्तारी उपयुक्त हैं। यदि सूक्ष्म प्रवर्धित पौधों का उपयोग करना हो, तो 30 सें.मी. लंबे, 5 सें.मी. मोटाई वाले, कम से कम 5 स्वस्थ और पूरी तरह खुले पत्तों वाले द्वितीयक दृढ़िकृत पौधों का चयन करें।

चयनित भूस्तारियों के सड़े हुए हिस्सों, सतही परतों, और सभी जड़ों को खुरचकर हटा देना चाहिए। फ्यूजेरियम म्लानि रोग से बचाव के लिए भूस्तारियों को 0.2 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम के घोल में 15-20 मिनट तक डुबोएं। फिर उन्हें रात भर छाया में रखें और अगले दिन रोपण करें। इन प्रथाओं का पालन करके जुलाई में केले के बागानों में रोपण, पौध संरक्षण, और स्वस्थ विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

बेल

यदि जून माह में उर्वरक डालने का कार्य पूर्ण न हुआ हो, तो शुष्क क्षेत्रों में जुलाई-अगस्त माह में खाद और उर्वरकों की पूरी मात्रा डालनी चाहिए। प्रत्येक पौधे के लिए प्रति वर्ष 5 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 50 ग्रा. नाइट्रोजन, 25 ग्रा. फॉस्फोरस, और 50 ग्रा. पोटाश डालें। यह मात्रा 10 वर्ष तक गुणात्मक अनुपात में बढ़ाते रहें, ताकि 10 वर्ष या उससे अधिक आयु के वृक्षों को 50 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्रा. नाइट्रोजन, 250 ग्रा. फॉस्फोरस, और 500 ग्राम पोटाश दी जाए।

ऊसर भूमि में पौधों में जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई दे सकते हैं, इसलिए ऐसे पौधों में 250 ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति पौधा उर्वरकों के साथ डालें या जुलाई में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करें। जिन बागों में फलों के फटने की समस्या हो, वहां 100-150 ग्राम बोरेक्स (सुहागा) प्रति वृक्ष खाद और उर्वरकों के साथ मिलाएं।

रोपण

जुलाई-अगस्त माह रोपण के लिए उपयुक्त हैं। रोपण से एक माह पहले 6-8 मीटर की दूरी पर 75-100 घन सें.मी. के गड्ढे तैयार करें। यदि जमीन में कंकड़ की तह हो, तो उसे निकाल दें। गड्ढों को 20-30 दिनों तक खुला छोड़ें, फिर 3-4 टोकरी गोबर की सड़ी खाद को गड्ढे की ऊपरी आधी मिट्टी में मिलाएं। ऊसर भूमि में 20-25 कि.ग्रा. बालू और मिट्टी के पी.एच. मान के अनुसार 5-8 कि.ग्रा. जिप्सम या पाइराइट मिलाकर गड्ढे को 6-8 इंच ऊंचा करें।

आँवला

जुलाई-अगस्त माह में आँवले के बागानों में कई महत्वपूर्ण प्रबंधन कार्य किए जाते हैं, जो रोग नियंत्रण, कीट प्रबंधन, और पौध प्रवर्धन से संबंधित हैं। इस द्विमाही में आँवले का रस्ट (रतुआ) रोग एक प्रमुख समस्या बन जाता है। इसके नियंत्रण के लिए 0.4 प्रतिशत घुलनशील गंधक या 0.2 प्रतिशत क्लोरथैलोनिल का तीन बार छिड़काव, जुलाई से शुरू करके एक माह के अंतराल पर करें।

आँवले में भरपूर फलन

श्याम व्रण (एन्थ्रेक्नोज) अगस्त से पत्तियों और फलों पर दिखाई देता है, जिसके प्रबंधन के लिए तुड़ाई से 15 दिन पहले 0.1 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम का छिड़काव करें। गुठली छेदक कीट का प्रकोप भी इस पर देखा जाता है। इसके नियंत्रण हेतु 2 मि.ली. प्रति लीटर की दर से क्विनालफॉस का छिड़काव करें।

जुलाई-अगस्त में आँवले के बीजों की बुआई की जा सकती है। अंकुरित पौधों को एक माह बाद क्यारियों में स्थानांतरित करें, जहाँ वे अगले वर्ष जुलाई तक प्रवर्धन के लिए तैयार हो जाते हैं। इस दौरान पैबंदी कलिकायन या विरूपित छल्ला विधि द्वारा आँवले का प्रवर्धन भी किया जा सकता है। सांकुर शाखा का चयन ऐसे मातृवृक्ष से करें जो अधिक फल देने वाला, कीटों और रोगों से मुक्त हो। कलिकायन द्वारा तैयार पौधों को 8-10 मी. (किस्म के अनुसार) की दूरी पर बाग में रोपित करें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा जुलाई-अगस्त में आँवले के पौधों को देनी चाहिए ताकि स्वस्थ विकास सुनिश्चित हो।

पपीता

जुलाई में मैदानी क्षेत्रों के बागवान पपीते की पौध तैयार करने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठा सकते हैं। सबसे पहले, किसी अच्छी किस्म के बीजों का चयन करें और उन्हें कवकनाशी से उपचारित करें। उपचारित बीजों को ऊंची उठी हुई क्यारियों में बोएं। पौधशाला में बीजों और पौधों को आर्द्रपतन (डैम्पिंग ऑफ) रोग से बचाने के लिए, बुआई से 15 दिनों पहले क्यारियों को 2.5 प्रतिशत फार्मेल्डिहाइड के घोल से उपचारित करें, फिर 48 घंटे बाद पॉलीथीन से ढककर निजर्मीकृत करें। पुराने पपीते के बागों को खरपतवार मुक्त रखें और जल निकासी की उत्तम व्यवस्था सुनिश्चित करें। सड़न रोग की रोकथाम के लिए पौधों के तनों और थालों पर 0.3 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स के घोल का छिड़काव करें, साथ ही तनों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाएं। बीजों के अंकुरण के बाद 0.2 प्रतिशत थीरम के घोल का छिड़काव करें। बाग में जल निकासी की समुचित व्यवस्था बनाए रखें ताकि पौधों का स्वस्थ विकास हो सके।

खजूर

जुलाई-अगस्त माह में खजूर के बागानों के प्रबंधन और प्रवर्धन के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं। खजूर को बीज से भी तैयार किया जा सकता है, लेकिन इसके एकलिंगी स्वभाव के कारण बीज से तैयार पौधों में नर और मादा का अनुपात 50:50 रहता है, जिससे फल देरी से आते हैं और उपज में असमानता रहती है। इसलिए, खजूर के पौधों का प्रवर्धन अच्छी गुणवत्ता वाले मादा मातृवृक्षों से सकर्स (अंत:भूस्तारी) द्वारा करना बेहतर है।

इस द्विमाही के दौरान, मातृवृक्ष से निकले भूस्तारियों में जड़ें विकसित करने के लिए उनके चारों ओर मिट्टी चढ़ाई जा सकती है। अगले वर्ष तक ये भूस्तारी मातृवृक्ष से

खजूर की आकर्षक पैकिंग

अलग करने योग्य हो जाते हैं। अलग करने से एक-दो दिन पहले खेत में पानी देना चाहिए। अलग करने से पहले भूस्तारी की पत्तियों को शीर्ष से लगभग 30 सें.मी. ऊपर काटें। बची पत्तियों को रस्सी से बांधें, फिर आसपास की मिट्टी हटाकर भूस्तारी को मातृवृक्ष से जोड़ने वाले स्थान पर काटकर अलग करें। पूर्व-तैयार गड्ढों में 8x8 मीटर की दूरी पर रोपाई करें, जिसमें 8-10 कि.ग्रा. वजन के भूस्तारियों का चयन करें।

इस दौरान खजूर के फलों की तुड़ाई भी होती है। वर्षा शुरू होने के कारण फल पूरी तरह नहीं पक पाते, इसलिए उन्हें डोका या प्रारंभिक डांग अवस्था में तोड़ लेना चाहिए। वातावरण की नमी के कारण तोड़े गए फलों में फफूंद लगने की आशंका रहती है, अत: उन्हें तुरंत प्रसंस्करण के लिए भेजें। छुहारा बनाने के लिए पूर्ण डोका फलों को अच्छी तरह धोएं, 5-10 मिनट गर्म पानी में उबालें, और फिर धूप में या 40-45 डिग्री सेल्सियस तापमान पर ड्रायर में 80-120 घंटे तक सुखाएं।

लीची

जुलाई में बागवानी कार्यों में वृक्षों के नीचे की जमीन को साफ रखना और जल निकासी की उचित व्यवस्था करना महत्वपूर्ण है। बागवान इस माह नए बाग लगाने और गूटी (एयर लेयरिंग) द्वारा पौधे तैयार करने का कार्य शुरू कर सकते हैं। पौधों में खाद और उर्वरक की समुचित व्यवस्था भी जुलाई में करें। यदि जुलाई में गूटी बांधने का कार्य पूरा न हुआ हो, तो इसे अगस्त में अवश्य समाप्त कर लें और बाग को खरपतवारों से मुक्त रखें। पुराने बागों में तना छेदक कीट की समस्या हो सकती है। अगस्त में इसकी रोकथाम के लिए अपशिष्ट जालों को साफ करें और तनों में बने सुराखों में पेट्रोल या मोनोक्रोटोफॉस में भीगी रुई के फाहे डालकर गीली मिट्टी से बंद करें। यदि लीची माइट का प्रकोप हो, तो 2 ग्राम प्रति लीटर सल्फर (गंधक) या 3 मि.ली. प्रति लीटर केल्थेन का छिड़काव करें। इस दौरान गूटी द्वारा तैयार पौधों को पौधशाला में अवश्य रोपें।

अनार

जुलाई-अगस्त माह में अनार के बागानों के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं, जो रोपण, प्रवर्धन, उर्वरक प्रबंधन, और रोग-कीट नियंत्रण से संबंधित हैं। इस दौरान पौध रोपण करना चाहिए और रोपण के तुरंत बाद सिंचाई कर लेनी चाहिए।

मृग बहार के लिए, जुलाई में अनार के पौधों को गोबर की खाद, फॉस्फोरस की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन और पोटाश की आधी मात्रा देनी चाहिए। खाद और उर्वरकों को पौधे के छत्रक के नीचे चारों ओर 8-10 सें.मी. गहरी खाई बनाकर डालें। यदि गूटी (एयर लेयरिंग) द्वारा अनार का प्रवर्धन करना हो, तो जुलाई-अगस्त में एक वर्ष पुरानी, पेंसिल जितनी मोटी, स्वस्थ, ओजस्वी, परिपक्व, 45-60 सें.मी. लंबी शाखा का चयन करें।

अनार में पुष्पण

शाखा पर कलिका के नीचे 3 सें. मी. चौड़ी छाल की गोलाई पूर्ण रूप से हटाएं। छाल हटाए गए भाग पर आईबीए (10000 पीपीएम) का लेप लगाकर नमी युक्त स्फेगनम मॉस चारों ओर लपेटें, पॉलीथीन शीट से ढकें, और सुतली से बांधें। जब पॉलीथीन के माध्यम से जड़ें दिखने लगें, शाखा को काटकर क्यारी में रोपित करें। यह द्विमाही कटिंग विधि द्वारा अनार के पौधे तैयार करने के लिए भी उपयुक्त है।

अनार में रोग एवं कीट नियंत्रण

तेलिया रोग से प्रभावित क्षेत्रों में मृग बहार किस्म नहीं लेनी चाहिए। अन्यथा, जुलाई से अगस्त तक रासायनिक जैवनाशियों, सैलिसिलिक अम्ल, बोरॉन, और कैल्शियम का नियमित छिड़काव करना होगा। माहूं कीट के प्रकोप पर प्रोफेनोफॉस-50 (2 मि./ली.) का छिड़काव करें, और गंभीर प्रकोप में इमिडाक्लोप्रिड (0.3 मि.ली./ली.) का उपयोग करें। जुलाई में पौधों पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का छिड़काव भी करें। अनार में फलों का फटना, विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में, एक गंभीर समस्या है। इसके प्रबंधन के लिए नियमित सिंचाई करें और जिब्रेलिक अम्ल 15 पीपीएम एवं बोरॉन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें। अगस्त में हस्त बहार के लिए पौधों को पानी देना रोक दें और इथ्रेल का उपयोग करें। पौधे के चारों ओर गोबर की खाद, नीम की खली, फॉस्फोरस, और पोटाश की मात्रा जड़ क्षेत्र में 8-10 सें.मी. गहरी नालियों में डालें।

अंगूर

जुलाई में मध्यम या देर से पकने वाली फल किस्मों की तुड़ाई के बाद उन्हें बाजार भेजने की व्यवस्था करें। इस माह में फलों के फटने और सड़ने की समस्या आम है। इसलिए 0.3 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स के घोल का छिड़काव अवश्य करें। साथ ही, फलों को चिड़ियों और बर्रों से बचाने के लिए उपाय करें। चिड़ियों से सुरक्षा के लिए चमकीली रिबन (पट्टियाँ) या फल गुच्छों पर हरी थैलियाँ लगाएँ। बर्रों के छत्तों को नष्ट करें। तुड़ाई के बाद पौधों में खाद और उर्वरक डालने की व्यवस्था करें। अगस्त में एन्थ्रेक्नोज (श्याम व्रण) रोग की आशंका रहती है इसकी रोकथाम के लिए समय रहते 0.2 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल का छिड़काव करें।

कटहल

जुलाई में तैयार फलों को तोड़कर बाजार भेजने की समुचित व्यवस्था करें। बागों में समुचित जल निकास का प्रबंध होना चाहिए। नए बाग लगाने का कार्य भी इसी माह प्रारंभ कर दें। अगस्त में नर्सरी तैयार करने के लिए बीजों को फलों से निकाल कर पौधशाला में बोएं। गूटी द्वारा पौधे तैयार करने का भी यही उत्तम समय है।

लोकाट

जुलाई में काट-छांट का कार्य समाप्त कर लेना चाहिए। वृक्षों के नीचे की जमीन

बेर

जून में काट-छांट के बाद यदि नाइट्रोजन किसी कारणवश न दी जा सकी हो तो उसे जुलाई में अवश्य दें। बाग में जल निकास की समुचित व्यवस्था करें। पौधशाला में बीजू पौधे तैयार करने के लिए यदि बुआई न की जा सकी हो तो इसे जुलाई में अवश्य करें। यदि वृक्षों पर चूर्णिल रोग के लक्षण दिखें तो केराथेन (0.1 प्रतिशत) के दो छिड़काव अगस्त में अवश्य करें।

बेर

साफ कर बाग को खरपतवार रहित रखें। अगस्त में गूटी बांधने का कार्य समाप्त कर लें। इसी माह नए बाग लगाने का कार्य भी कर सकते हैं।

नीबूवर्गीय फल

जुलाई में नीबू (लेमन) और लाइम के फल पककर तैयार हो जाते हैं, जिन्हें तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। इस माह में नए बाग लगाने का कार्य भी शुरू किया जा सकता है। कैंकर रोग से बचाव के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (250 ग्रा./100 ली. पानी) और नीम की खली (5 कि.ग्रा./100 ली. पानी) के घोल का छिड़काव करें। जल निकासी की उचित व्यवस्था सुनिश्चित करें।

यदि जुलाई में रोपाई न हो सकी हो, तो अगस्त में इसे पूरा करें। पर्णसुरंगी कीट (लीफ माइनर) से बचाव के लिए पौधशाला में रोगोर या मेटासिस्टॉक्स (300 मि.ली./100 ली. पानी) का छिड़काव करें। फलों का तुड़ाई-पूर्व गिरना एक गंभीर समस्या है, जिसके लिए अगस्त में 10 पीपीएम 2,4-डी (1 ग्रा./100 ली. पानी) का छिड़काव अवश्य करें। सितंबर में पौधों को नाइट्रोजन की तीसरी खुराक देना सुनिश्चित करें।

नीबू और लाइम के वृक्षों में सूक्ष्म पोषक तत्वों (जस्ता, मैग्नीशियम, बोरॉन) की कमी आम है। इसकी पूर्ति के लिए जिंक सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट, बोरिक अम्ल, और बुझा हुआ चूना (प्रत्येक 1 किलोग्राम/450 लीटर पानी) के संयुक्त घोल का छिड़काव करें। इस घोल में 5 कि.ग्रा. यूरिया मिलाने से नाइट्रोजन की कमी भी पूरी होती है।

सीताफल

जुलाई माह में अच्छी किस्म के कलमी पौधों को बागों में रोपित करें तथा सिंचाई की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित करें। अगस्त माह में खरपतवारों को निकालने की व्यवस्था करें। इस माह में ही पलवार लगाने की भी व्यवस्था करें ताकि मृदा में नमी संरक्षित की जा सके। मूलवृंत से निकली हुई पार्श्व शाखाओं को समय-समय पर निकलते रहें तथा पौधों को उचित आकार देने के लिए निचली शाखाओं को 2-3 फीट तक छांट दें।

सेब

जल निकासी की उचित व्यवस्था सुनिश्चित करें और अगेती पकने वाली किस्मों की तुड़ाई कर उन्हें बाजार में भेजने की व्यवस्था करें। कज्जली धब्बा रोग की स्थिति में डाइथेन-जेड 78 का 0.2 प्रतिशत घोल छिड़कना लाभकारी होता है। तना कैंकर रोग के प्रकोप में संक्रमित शाखा को कुछ स्वस्थ भाग सहित काटकर नष्ट कर दें और प्रभावित भाग अथवा पूरे वृक्ष पर बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।

इस माह नए पौधे तैयार करने के लिए कलम बांधने का कार्य भी करें।

सेब

अगस्त माह में डिलिशियस किस्में परिपक्व हो जाती हैं। अतः इन्हें अच्छी एवं आकर्षक पैकिंग कर बाजार में भेजने की व्यवस्था करें। रूईया एवं सेंजोस स्केल जैसे कीटों की रोकथाम हेतु सितंबर में मेटासिस्टॉक्स (0.5 प्रतिशत) का छिड़काव करें। फलों के तुड़ाई-पूर्व झड़ने से बचाव के लिए अगस्त में नेफ्थेलीन एसिटिक अम्ल (20 पी.पी.एम., यानी 2 ग्रा. प्रति 100 ली. पानी) का छिड़काव अवश्य करें।

नाशपाती, आड़ू, खुबानी एवं आलूबुखारा

नाशपाती के बीजू पौधों पर भेंट कलम जुलाई में चढ़ानी चाहिए। इसी माह आड़ू, खुबानी और आलूबुखारा आदि के फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। कज्जली धब्बों की रोकथाम के लिए नाशपाती एवं अन्य फलों में डाइथेन जेड-78 (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। आड़ू, खुबानी व आलूबुखारा में भूरा सड़न रोग की रोकथाम के लिए बाविस्टिन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। अगस्त में नाशपाती के फलों को तोड़कर भेजने की व्यवस्था करें एवं फल सड़न रोग की रोकथाम के लिए ब्लाइटॉक्स (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें।

स्ट्रॉबेरी

जुलाई-अगस्त माह में पहाड़ी क्षेत्रों में स्ट्राबेरी के पौधे लगाए जा सकते हैं। यदि पर्याप्त बारिश न हो, तो क्यारियों में पानी की उचित व्यवस्था करें और सितंबर में पलवार (मल्च) का प्रबंधन करें। खेत की अच्छी तरह जुताई कर, गोबर की खाद मिलाकर 6 x 1 x 15 मीटर आकार की क्यारियाँ तैयार करें। पौधों को 15 x 15 सें.मी., 15 x 30 सें.मी., या 30 x 30 सें.मी. की दूरी पर रोपें।

नाशपाती

इसके साथ ही, जुलाई-अगस्त में बागवानी के प्रमुख कृषि कार्यों की चर्चा यहीं समाप्त होती है। अगली द्विमाही (सितंबर-अक्टूबर) बागवानों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस दौरान केला, स्ट्राबेरी, और पपीता जैसे नए बागों की स्थापना के साथ-साथ लीची, अनार, चीकू, अंगूर, सेब, और आड़ू में उर्वरक प्रबंधन, पुष्पण, और कीट रोग नियंत्रण जैसे आवश्यक कार्य किए जाएंगे। बेर और लोकाट में भी पुष्पण की देखभाल महत्वपूर्ण रहेगी। इन सभी विषयों पर विस्तृत जानकारी और उपयोगी सुझाव **'फल-फूल'** पत्रिका के अगले द्विमासिक अंक में प्रस्तुत किए जाएंगे। अतः इस पत्रिका के साथ जुड़कर बागवानी की नवीनतम तकनीकों को अपनाएँ और अपने बागों को समृद्ध एवं उत्पादक बनाएँ।

काला बुखार के उपचार में कारगर हिमालयी हिसालू

हिमालयी क्षेत्र में पाई जाने वाली जंगली झाड़ी हिसालू (रूबस एलिप्टिकस) अब गंभीर रोग काला बुखार (विसरल लीशमैनियासिस) के इलाज में मददगार साबित हो सकती है। एक हालिया अध्ययन में हिसालू के तनों और पत्तियों में ऐसे तत्व पाए गए हैं जो इस रोग के परजीवी को समाप्त करने में सक्षम हैं। इन तत्वों का उपयोग कर अब काला बुखार के उपचार के लिए दवाइयां तैयार की जाएंगी।

सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय के जन्तु विज्ञान विभाग के प्रोफेसरों और शोधर्थियों ने, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के सहयोग से वर्ष 2021 से 2024 तक हिसालू के तनों और पत्तियों पर शोध किया। यह अध्ययन स्प्रिंजर नेचर के '3-बायोटेक जर्नल' में प्रकाशित हुआ है। शोध में यह पाया गया कि हिसालू का अर्क काला बुखार फैलाने वाले परजीवी को प्रभावी रूप से नष्ट करता है।

पोषक तत्वों और औषधीय गुणों से भरपूर

हिसालू में विटामिन सी, ई और के प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। साथ ही इसमें पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन और फाइबर जैसे पोषक तत्व भी मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त, इसमें एंटीऑक्सीडेंट, एंटीबैक्टीरियल और एंटी-इंफ्लेमेटरी (सूजन-रोधी) गुण भी पाए जाते हैं। शोधकर्ताओं द्वारा इसके कैंसर-रोधी प्रभावों पर भी अध्ययन किया जा रहा है।

अब चूहों पर होगा परीक्षण

हिसालू की पत्तियों एवं तने में पाए गए परजीवी-नाशक तत्वों की प्रभावशीलता

को परखने के लिए चूहों पर प्रयोग किया जाएगा। शोधकर्ता यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि इन तत्वों का शरीर पर कोई दुष्प्रभाव न हो और यह सुरक्षित रूप से इस गंभीर रोग के परजीवी को समाप्त कर सकें। यदि यह परीक्षण सफल रहता है, तो आगे चलकर इंसानों पर भी इसका परीक्षण कर दवाइयां विकसित की जा सकेंगी। ■

केले की फसल पर जलवायु संकट का गहरा प्रभाव

आज जब पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से जूझ रही है, तब इसकी गंभीर मार खेतों पर भी पड़ रही है। खासकर केले की फसल, जो न केवल करोड़ों लोगों की आजीविका का आधार है बल्कि वैश्विक खाद्य सुरक्षा में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, अब संकट के दौर से गुजर रही है।

केला एक ऐसा फल है जो मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय जलवायु में उगाया जाता है। लेकिन बीते कुछ वर्षों में जिस तरह से जलवायु में तेजी से बदलाव हुआ है, बढ़ते तापमान, अनियमित और अत्यधिक बारिश, भयंकर तूफान और नये कवक रोगों के उभरने से यह फसल अत्यधिक संवेदनशील बन गई है। लेटिन अमेरिका और कैरिबियाई देशों में, जहाँ केला खाद्य और आर्थिक आधार स्तंभ है, वहाँ यह फसल जलवायु परिवर्तन के कारणों से तबाही के कगार पर है।

तेज गर्म हवाओं और लू जैसी स्थितियों में केले के पत्ते फटने लगते हैं, जिससे पौधे ठीक से विकसित नहीं हो पाते। वहीं, अनियमित बारिश और बाढ़ की वजह से फसलों की जड़ें सड़ने लगती हैं। इससे उत्पादन में भारी गिरावट आ रही है। कवक रोग जैसे पनामा डिजीज और ब्लैक सिगाटोका अब पहले से अधिक तेजी से फैल रहे हैं और पूरी फसल को चपेट में ले सकते हैं।

सबसे चिंताजनक स्थिति यह है कि केले की सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाली किस्म 'केवेंडिश' में आनुवंशिक विविधता नहीं है। सभी पौधे लगभग एक जैसे होते हैं, जिससे वे एक ही तरह के रोग और जलवायु संकटों से एकसाथ प्रभावित हो जाते हैं। इसका अर्थ है कि यदि कोई एक रोग फैलता है, तो वह पूरे क्षेत्र की फसल को नष्ट कर सकता है।

इस संकट का असर केवल खेतों तक सीमित नहीं है। लाखों किसान, खेतिहर मजदूर, परिवहनकर्ता और बाजार में जुड़े व्यापारी इससे प्रभावित हो रहे हैं। जिन समुदायों का जलवायु परिवर्तन में योगदान न के बराबर है, वे इसकी सबसे बड़ी कीमत चुका रहे हैं।

वैज्ञानिकों और कृषि विशेषज्ञों ने अपील की है कि केला करोड़ों लोगों के पोषण का

आधार है। इसे बचाने के लिए तुरंत और ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। इस स्थिति से निपटने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है। धनी और औद्योगिक देश जो जीवाश्म ईंधनों के सबसे बड़े उपभोक्ता हैं, उन्हें अपनी नीतियाँ बदलनी होंगी। साथ ही, प्रभावित देशों को जलवायु संकट से निपटने के लिए आर्थिक और तकनीकी सहायता देनी होगी। स्थानीय स्तर पर भी समाधान तलाशे जाने चाहिए, जैसे कि जलवायु- सहिष्णु किस्मों का विकास, बेहतर सिंचाई प्रणाली, और किसानों को प्रशिक्षण देना ताकि वे बदलते मौसम के अनुसार खेती की नीति अपना सकें।

(प्रस्तुति : गजेन्द्र) ■

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 73 वर्षों से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **'अगले माह के कृषि कार्यकलाप'** तथा 'कृषि खबरें, देश विदेश की' जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्यः

एक प्रति : 30 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रुपये

संपर्क सूत्रः

प्रभारी, व्यवसाय एकक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष : 011–25843657, ईमेल : bmicar@icar.org.in

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स विबा प्रेस प्रा. लि., सी-66/3, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली 110 020 से मुद्रित। संपादकः सुनीता अरोड़ा